कालिदास वाङ्मय

समीक्षात्मक अध्ययन

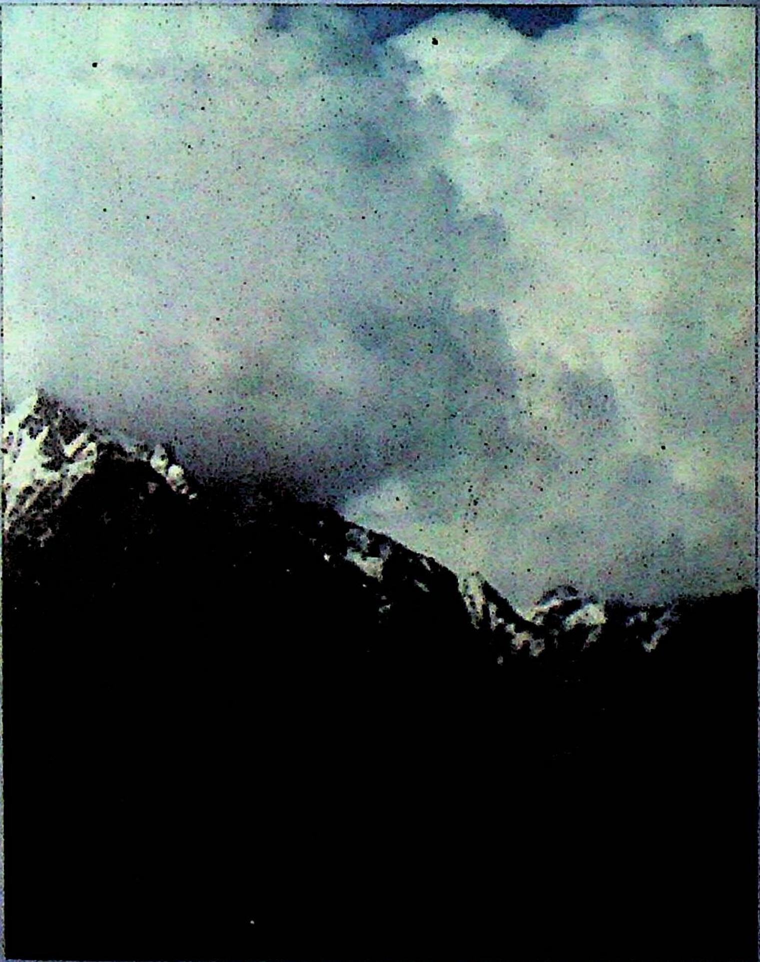

प्रायोजक

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gy

महीयसी एनी बेसेन्ट को पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष प्रो. विश्वनाथ भट्टाचार्य (पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष, का.हि.वि.वि.)

उद्घाटन सम्बोधन करते हुए प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी (पूर्व संकाय प्रमुख सं.वि.ध.वि. संकाय, का.हि.वि.वि.) प्राचार्या डा. कुसुम मिश्रा एवं प्रो. सुषमा कुलश्रेष्ठ के साथ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्याकारों की दृष्टि से

कालिदास वाङ्मय

का

समीक्षात्मक अध्ययन

सम्पादिका

कमला पाण्डेय

राष्ट्रिय-संस्कृत-संगोष्ठी की प्रस्तुति
६-७ मार्च, २००६ को आयोजित

प्रायोजक

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

आयोजक : संस्कृत विभाग

वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा

वाराणसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशिका एवं संरक्षिका
डॉ० कुसुम मिश्रा
प्राचार्या
वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

प्रधान सम्पादिका
डॉ० कमला पाण्डेय
संस्कृत विभागाध्यक्षा-वसन्त कन्या महाविद्यालय
कमच्छा, वाराणसी

सम्पादिका मण्डल
डॉ० शान्ता चटर्जी
व्याख्याता-संस्कृत विभाग
डॉ० अनुराधा बनर्जी
अंग्रेजी विभागाध्यक्षा
डॉ० स्वरवन्दना शर्मा
संगीत विभागाध्यक्षा
डॉ नन्दिनी वर्मा
व्याख्याता— प्रा० भा० इ० सं० पु०
वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

मुख पृष्ठ : सौजन्य से—ग्रासेस

© प्रकाशक :

मुद्रक
महाबीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी
दूरभाष-२२७७८०५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशकीय

विगत दो हजार वर्षों से साहित्यकारों एवं समालोचकों ने कालिदास की रचनाओं का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया; साथ ही साथ विभिन्न पद्धतियों से उनकी समीक्षा की । इन्हीं विविध दृष्टियों के माध्यम से कालिदास साहित्य के चिन्तन-अनुचिन्तन के लिए विगत ६,७ मार्च २००६ को राष्ट्रीय संस्कृत संगोष्ठी सम्पन्न हुई । इस गोष्ठी को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रायोजित किया गया। गोष्ठी में प्राचीन से अर्वाचीन तक के समीक्षकों एवं विदेशी विद्वानों की समालोचनाओं के आलोक में कालिदास वाङ्मय का विशद विवेचन किया गया ।

इस गरिष्ठ संगोष्ठी को संस्कृत के मूर्धन्य विद्वानों ने सम्बोधित किया । विचारकों ने अपने गहन चिन्तन को व्याख्यान के माध्यम से प्रस्तुत किया । शोधछात्र-छात्राओं ने अपने शोधपत्रों के साथ बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया । इन सभी विषयों को संकलित कर पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने कां हमारा यह लघु प्रयास है । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आर्थिक सहायता से संगोष्ठी के विषयों को ग्रन्थ का आकार प्राप्त हुआ है ।

हमें विश्वास है कि यह संग्रह कालिदास साहित्य के अध्येताओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगा ।

कुसुम मिश्रा
(प्राचार्या)

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरो वाक्

सौमनस्य एवं सामरस्य के सन्देश वाहक कालिदास की शाश्वत चेतना से ऊर्जस्वल वसन्त कन्या महाविद्यालय मूलतः **'शिक्षा ही सेवा है'** के मन्त्र से अनुप्रेरित है। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने भारत की नारी के सम्पूर्ण विकास का जो स्वप्न देखा, राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्यों को पहचाने बिना उसको रूपायित करना सम्भव न था; इसीलिए उन्होंने भारत की प्राचीन धरोहर को शिक्षा के लिए पुनर्गठन का कमठ आधार बनाया। इसी अन्तश्चेतना से अनुप्राणित महाप्राण रोहित जी ने इस संस्था की बुनियाद के रूप में जिन सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना की, कालिदास उसी सनातन संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं। चिरन्तनता और नूतनता के केन्द्र विन्दु के रूप में स्थित इस विद्यालय में कालिदास को जानने पहचानने का क्रम स्थापना के समय से ही चला आ रहा है। पाठ्य एवं पाठ्येतर—दोनों प्रकारों में उनके साहित्य का मकरन्द महकता है। इसी की अगली कड़ी के रूप में विगत ६,७ मार्च २००६ को आयोजित हुई—राष्ट्रीय संस्कृत संगोष्ठी। विषय था—**व्याख्याकारों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन**। इस द्विदिवसीय संगोष्ठी में आमन्त्रित शोधपत्रों को ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

इस अवसर पर आमन्त्रित महनीय विद्वानों, विषय विशेषज्ञों एवं शोधार्थियों के प्रति सान्द्र आभार व्यक्त करती हूं, जिनके उत्साहपूर्ण सहयोग ने आयोजन को सम्पन्न किया। कृतज्ञ हूं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति जिनके आर्थिक पृष्ठपोषण से यह सारस्वत अनुष्ठान पूर्ण हुआ। आभारी हूं प्राचार्या—डॉ० कुसुम मिश्रा जी की, जिनके मार्गदर्शन ने संगोष्ठी को सफल बनाया तथा संरक्षण ने प्रस्तुतियों को पुस्तकीय कलेवर देकर प्रकाशित किया। कृतज्ञता अर्पित करती हूं वसन्त परिवार को, जिसके आत्मीय सहयोग से दुरूह कार्य भी सुकर हुए।

धन्यवाद देती हूँ महावीर मुद्रणालय को, पुस्तक के मुद्रण हेतु। क्षमा प्रार्थिनी हूँ त्रुटियों के लिए; अपेक्षा करती हूँ उदार हृदयों के वैशद्यभाव की–

सम्पादिका

●

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुक्रम

प्रतिपाद्य .... संयोजिका .... डॉ० कमला पाण्डेय १

संगोष्ठी विवरण .... सह संयोजिका ...... डॉ० शान्ता चटर्जी ४

लक्षणग्रन्थों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन

१.	कालिदास के पद्यों की सांगीतिक समीक्षा	*डॉ० स्वरवन्दना शर्मा*	१०
२.	भोजराज में कालिदास सन्दर्भ	*डॉ० सदाशिव कुमार द्विवेदी*	१५
३.	न इति कालिदास:	*प्रो० रहस विहारी द्विवेदी*	१९
४.	काव्य शास्त्रीय आलोक में कालिदास के श्रृंगार बिम्ब	*डॉ० रचना शर्मा*	२५
५.	रसगङ्गाधरे कालिदासीय-सन्दर्भा:	*डॉ० कमला पाण्डेय*	३१

टीकाकारों एवं कवियों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन

६.	टीकाकारों की दृष्टि में मेघदूत	*शिव शंकर कुमार मिश्र*	३३
७.	कुमार-सम्भवम् में योग	*रजनी सिन्हा*	४१
८.	मल्लिनाथ सूरि एवं कालिदासत्रयी	*डॉ० विवेक पाण्डेय* *डॉ० मनीषा शुक्ला*	४३
९.	काटयवेम की दृष्टि में मालविकाग्निमित्रम्	*संध्या कुमारी*	४८
१०.	कालिदास के काव्यों में संस्कार विमर्श	*डॉ० आभा श्रीवास्तव*	५०
११.	कालिदासस्य सर्वस्वम्	*मनीषा तिवारी*	५४

पाश्चात्य समालोचकों की दृष्टि में कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन

१२.	I name thee O Shakuntala	*Km. Leena Keshwani*	56
१३.	Kalidas : In Western Eyes	*Mrs. Smita Dwivedi*	60
१४.	Kalidas : The Unsurpassed Giant of Lyrical Beauty	*Dr. (Mrs.) Mitali Deb*	62

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१५. विश्वायन : प्रकृति चेतना : कालिदास और शेक्सपीयर — डॉ० अनुराधा बैनर्जी — ६६

१६. पाश्चात्य आलोचक एवं कालिदास — *प्रो० राजीव रंजन सिंह* — ७०

आधुनिक समीक्षकों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन

१७. द्विजेन्द्र लाल राय की दृष्टि में अभिज्ञान शाकुन्तलम् — *डॉ० शान्ता चटर्जी* — ७४

१८. कालिदास की निरंकुशता : महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार — *कु० अभिलाषा त्रिपाठी* — ७७

१९. रवीन्द्र नाथ ठाकुर की दृष्टि में कालिदास की कृतियाँ — *डॉ० कृष्णा गोस्वामी* — ७८

२०. रवीन्द्र नाथ टैगोर की दृष्टि में कालिदास — *डॉ० नाहीद आबिदी* — ८०

२१. कालिदास का लालित्य : (पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में) — *डॉ० तृप्ति रानी जायसवाल* — ८७

२२. कालिदास का सांस्कृतिक परिवेश (भगवतशरण उपाध्याय का अधिगम) — *डॉ० अर्चना अग्रवाल* — ९०

२३. कालिदास वाङ्मय में मयूर (प्रभुदयाल अग्निहोत्री की दृष्टि में) — *डॉ० अर्चना कुमारी दूबे* — ९४

२४. कालिदास की शिव दृष्टि एवं शाप (पं० विद्या निवास मिश्र के अनुसार) — *ज्योति सिंह, संजय कुमार* — ९६

२५. शाकुन्तल : प्रो० रेवाप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में — *वागीशराज शुक्ल* — ९८

२६. कालिदास और आधुनिक कवि नागार्जुन — *डॉ० सुमन जैन* — १००

२७. कालिदास के साहित्य में गुप्तकालीन भारत की छवि — *डॉ० पूनम पाण्डेय* — १०३

२८. कालिदास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि — *डॉ० नन्दिनी वर्मा* — १०८

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जयन्ति ते सुकृतिनः

डॉ० कमला पाण्डेय*

कालिदास भारत की सांस्कृतिक चेतना के संवाहक कवि हैं । वे त्याग, तपस्या और तपोवन की संस्कृति के उद्‌गाता हैं, इसीलिए उन्हें भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि माना जाता है । पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– "भारतीय धर्म, दर्शन, शिल्प और साधना में जो कुछ उदात्त है, जो कुछ दृप्त है, जो कुछ महनीय है, जो कुछ ललित और मोहन है उनका प्रयत्नपूर्वक सजाया-सँवारा रूप कालिदास का काव्य है ।"

जिस प्रकार त्रिपथगा गंगा से स्वर्ग का मार्ग पवित्र होता है, संस्कारवती वाणी से मनीषी सुशोभित होता है, उसी प्रकार कालिदास की कविता से देववाणी पवित्र भी है और विभूषित भी । उनकी वाणी का जितनी बार अनुशीलन किया जाय उतनी बार वह एक नवीन रमणीय अर्थ प्रस्तुत करती है; इसीलिए कहा गया है– **'विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी ।'** उनकी कविता में ऐसा आलोकसामान्य (अलौकिक अर्थ–रस) निगूढ़ है, जिसके नव-नवोन्मेष के अधिगम के लिए व्याख्याकारों की सुदीर्घ शृंखला है । टीकाकारों, समीक्षकों एवम् आलंकारिकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से उनके काव्य का आस्वादन किया है । कालिदास की वाणी के रहस्य को गंभीरतम बतलाते हुए प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ कहते हैं–

कालिदासगिरासारं कालिदासः सरस्वती
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद् विदुर्नान्ये तु मादृशाः ।।

टीकाकारों ने यद्यपि उनकी कविता के अभिप्राय को समझाने का भरपूर प्रयास किया तथापि वे आश्वस्त नहीं हैं कि उन्होंने कालिदास को पूरी तरह जान लिया है । इसीलिए साहित्यरसिकों ने उनके ग्रन्थों का बारम्बार आलोचन किया है और आज भी कालिदासीय साहित्य का सतत अनुशीलन हो रहा है । यह द्विदिवसीय राष्ट्रीय-संस्कृत-संगोष्ठी इन्हीं समीक्षकों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय के आलोचन के लिए आयोजित है ।

---

* संयोजिका–राष्ट्रीय संस्कृत संगोष्ठी, संस्कृत विभागाध्यक्षा, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी 'कालिदास अपनी बात' में कहते हैं–"कालिदास के साहित्य पर साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने अनेक प्रकार से विचार किया है, अत: पूरा संस्कृत-साहित्य ही कालिदास की टीका है।" इस संगोष्ठी में भी सत्रों का विभाजन इस प्रकार किया गया है, जिससे सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में अवगाहन किया जा सकता है। भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में कालिदास की कविता की समीक्षा प्राय: सभी आलंकारिकों ने की है। आनन्दवर्धनाचार्य एवम् अभिनवगुप्तपादाचार्य कालिदास को महाकवि संज्ञा से विभूषित करते हैं तथा उनके काव्यों के उदाहरणों का यत्र-तत्र उल्लेख करते हैं। कुन्तक ने अपने वक्रोक्तिजीवित में ८८ कालिदास के पद्यों पर विचार किया है, भोजराज ने शृंगार प्रकाश में ७१६ पद्य तथा सरस्वती कण्ठाभरण में १६२ पद्य उदाहृत किये हैं। पण्डितराज जगन्नाथ यद्यपि **'निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं'** कह कर स्वरचित पद्य ही उदाहरण के रूप में रखते हैं, तथापि रस निरूपण प्रसंग में दुष्यन्त-शकुन्तला का उल्लेख करते हैं। चित्रमीमांसाकार अप्पयदीक्षित का खण्डन करते हुए रसगंगाधरकार **"वागर्थाविव सम्पृक्तौ"** में भाव ध्वनि को सिद्ध करते हैं।

संस्कृत टीकाकारों के क्रम में बल्लभ देव (रघुपंजिका), हिमाद्रि (दर्पण), सुमति विजय (सुगमान्वयप्रबोधिका), चरित्रवर्धन (शिशु हितैषिणी) दिनकर मिश्र (सुबोधिनी) विजयगनि (सुबोधिका) विजयानन्द सूरीश्वर (रघुवंश सूत्रवृत्ति), धर्ममेरु (रघुटीका) मल्लिनाथ (संजीवनी) आदि नाम गिंनाये जाते हैं। Prof. Aufrecht ने कैटलॉग कैटगरम् में मेघदूत की ३० टीकाओं का नाम गिनाया है; जब कि उसकी ६४ टीकाओं की उपलब्धि ज्ञात हुई है। प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी ने कुमारसंभवम् की अरुण गिरि नाथ की टीका का उल्लेख भी किया है।

बाणभट्ट ने कालिदास की प्रशंसा में **'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सुक्तिषु, प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते"** (हर्ष-चरित) कह कर मुक्त कण्ठ से उनकी महिमा का गान किया है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में कालिदास की बहुश: प्रशस्ति की है, **'कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा' 'काव्येषु नाटकं'-रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला, 'कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्' 'भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः'** इत्यादि अनेक प्रशस्तियां कवियों द्वारा वाणीवरदपुत्र कालिदास को समर्पित की गई हैं। हिन्दी कवि नागार्जुन ने भी महाकवि कालिदास के प्रति अपने उद्‌गार अर्पित किये हैं। पाश्चात्य विचारक भी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास की कोमल-कान्त पदावली का आदर करते हैं । एलेक्जेण्डर वॉन हम्बल्ट, जर्मन कवि गेटे के उद्‌गारों के आंग्ल अनुवादक मि०ई०वी० ईस्टविक, हिल ब्राण्ट, मोनियर विलियम्स, सर विलियम जोन्स, वेबर, कीथ, गावरान्सकी, वेख०एच०, एम०आर०काले तथा अर्वाचीन भारतीय अंग्रेजी समीक्षक भाऊ दाजी, आर०के० भण्डारकर, जी०आर० नन्दर्गीकर, ए०बी०गजेन्द्रगडकर ।

आधुनिक समालोचकों को दो भागों में बांटा जा सकता है । स्वतन्त्रता पूर्व-रवीन्द्रनाथ टैगोर, द्विजेन्द्र लाल राय, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अरविन्द घोष, वासुदेव विष्णु मिराशी । स्वान्त्र्योत्तर–पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, भगवत शरण उपाध्याय, वासुदेव शरण अग्रवाल, विद्या निवास मिश्र, भोला शंकर व्यास, सीताराम चतुर्वेदी, बलदेव उपाध्याय, प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी इत्यादि ।

कालिदास के कृतित्व के पर्यालोचन में डॉ० सीताराम सहगल, डॉ० अभित्र चन्द्र दास, डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री, डॉ० सुशील कुमार डे, दक्षिणावर्तनाथ, डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री, डॉ० सीताराम चतुर्वेदी जी का भी महत्त्वपूर्ण अवदान है । श्री राम गोपाल नन्दर्गीकर ने रघुवंश महाकाव्य का सम्पादन करते हुए बल्लभदेव से लेकर धर्ममेरु तक की टीकाओं की हस्तलिखित प्रतियों के विषय में पर्याप्त जानकारी दी है और मल्लिनाथ की संजीवनी के साथ आंग्लभावानुवाद प्रस्तुत कर संस्कृत जगत् को महनीय अवदान दिया है । परिशिष्ट में उन्होंने हेमाद्रि, चरित्रवर्धन और दिनकर के साथ मल्लिनाथ की तुलनात्मक व्याख्याओं का भी परिशीलन किया है ।

प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी ने सम्पूर्ण कालिदास ग्रन्थावली का पाठभेद के साथ सम्पादन कर साहित्य जगत् का महान् उपकार किया है । उनके 'कालिदास अपनी बात' नामक ग्रन्थ में कालिदासविषयिणी पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है । पं० सीताराम चतुर्वेदी की हिन्दी भाषा के साथ सम्पादित कालिदास ग्रन्थावली भी संस्कृत जगत् को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन है । इस ग्रन्थ में डॉ० राम कुमार चौबे द्वारा कालिदास सम्बन्धी पुस्तकों एवं निबन्धों की सूची तथा पत्र-पत्रिकाओं में कालिदास सम्बन्धी लेख और निबन्धों की जानकारी देकर आपने जिज्ञासु जनों को अमूल्य सहयोग प्रदान किया है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगोष्ठी-विवरण

डॉ० शान्ता चटर्जी*

वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी में '**व्याख्याकारों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन**' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रख्यात संस्कृत विद्वान् प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी ने कहा–कालिदास के माता पिता 'जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ' जगत् के माता पिता पार्वती और परमेश्वर ही हैं। यद्यपि कालिदास की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है तब भी उनके इस श्लोक 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये' के आरंभिक पदों पर टीका की आवश्यकता है। साथ ही आपने विभिन्न टीकाकारों के पाठ-भेदों की चर्चा की। इन्होंने कहा कि संस्कृत साहित्यशास्त्र, हिन्दी साहित्यशास्त्र से भिन्न है क्योंकि संस्कृत साहित्यशास्त्री अपनी शास्त्रीय परंपरा को प्राधान्य देता है, जबकि हिन्दी साहित्य शास्त्री अपने स्वतः के चिन्तन को महत्त्व देता है। इसके अतिरिक्त आपने कहा कि कुमार संभवम् के प्रथम से सात सर्ग ही उनके द्वारा रचित लगते हैं। ८वें से १७ तक के सर्गों की भाषा संबंधी अशुद्धता को देखकर लगता है कि ये कालिदास द्वारा रचित है ही नहीं बल्कि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा रचित हैं। क्योंकि कालिदास की भाषा प्रासादिक है। उसके दर्शन बाद के सर्गों में नहीं मिलते। यह ज्ञान भी हमें टीकाकारों द्वारा ही होता है। इसलिए टीकाओं एवं टीकाकारों का संस्कृत साहित्य में विशेष महत्त्व है। कालिदास के सभी सन्दर्भों पर सामग्री संकलित करने पर कालिदास समीक्षा की एक प्राचीनतम और विराट् टीका मिल सकती है। समाज से लेकर व्यक्ति तक तथा कुटुम्ब से लेकर विश्व तक का प्रतिनिधित्व करती यह व्याख्या सर्वतोमुखी व्याख्या होगी, जिसमें नवीनतम मानदण्डों का प्राचीनतम मानदण्डों के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी होगा और विचार के नवीन आयाम भी प्रकाश में आ सकेंगे।

अध्यक्ष पद से पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष का.हि.वि.वि. प्रो० विश्वनाथ भट्टाचार्य ने कहा कि कवि कालिदास को समझने के लिए किसी टीका की

---

* सहसंयोजिका–राष्ट्रीय संस्कृत संगोष्ठी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आवश्यकता नहीं है। कवि के स्वाभाविक उच्छ्वासों का बोध तो उसकी रचनाओं से ही हो जाता है। इसलिये कवि के हृदयोच्छ्वास को श्रद्धा से पकड़ने की आवश्यकता है। साथ ही आपने महाविद्यालय में कालिदास पर संगोष्ठी के आयोजन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य की सराहना की। क्योंकि कालिदास ऐसे कवि हैं जो सभी अलंकारशास्त्रों से पहले हुए हैं। इसलिये अलंकार का कोई भी ग्रन्थ कालिदास से प्राचीन नहीं। स्थूल को अमूर्त के साथ जोड़ने का कार्य कालिदास जैसे महाकवि ने ही किया। इन्होंने कविप्रसिद्धि को प्रारंभ किया। आपने टीकाओं के संदर्भ में 'मेघदूत' के अनेक टीकाओं संस्करणों की चर्चा की तथा अभी तक मेघदूत पर की गयी विभिन्न टीकाओं का उल्लेख किया।

दिल्ली से आई प्रो. सुषमा कुलश्रेष्ठ ने विशिष्ट अतिथि के पद से कहा कि कालिदास के साहित्य को टीका के बिना नहीं समझा जा सकता। शताब्दियों पहले जन्में कालिदास पर भिन्न-भिन्न भाषाओं में १००० टीकाएँ हैं, जिनको पढ़ने से स्पष्ट होता है कि कालिदास के साहित्य के रहस्य को जानने के लिये साहित्य, संगीत, कला, शास्त्र आदि विविध विधाओं का ज्ञान आवश्यक है। इसलिये कालिदास पर इण्टरडिसिप्लिनरी अध्ययन की आवश्यकता है। संगीत और कामशास्त्र को आंधार बनाकर कालिदास के वाङ्मय के सूक्ष्म अध्ययन की महती आवश्यकता है। आपने ६४ कलाओं को लक्ष्य करके कालिदास पर शोधकार्य करने पर बल दिया।

आरम्भ में संगीत विभाग की छात्राओं ने मंगलाचरण और कुलगीत प्रस्तुत किया। अतिथियों का स्वागत करते हुए प्राचार्या डॉ. कुसुम मिश्रा ने कहा-कालिदास की कविता कालजयी है। विषय प्रवर्तन करते हुए संगोष्ठी की संयोजिका डॉ. कमला पाण्डेय ने कालिदास साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डाला। आभार प्रदर्शन डॉ० कुमुद रंजन ने तथा संचालन डॉ० शान्ता चटर्जी ने लिया।

प्रथम सत्र–'लक्षण ग्रंथों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन' विषयक प्रथम सत्र में मुख्य वक्ता पद से बोलते हुए प्रो. रहसबिहारी द्विवेदी, संकायाध्यक्ष, कला संकाय, रानी दुर्गावती वि.वि. जबलपुर ने कहा कि प्राचीन कवियों के काव्य में सिद्धांत व प्रयोग साथ-साथ चलता है। प्राचीन कवि केवल कविता ही नहीं करते, बल्कि काव्य शास्त्र पर अच्छी अवधारणा भी व्यक्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते चलते हैं। प्राचीन काल से लेकर आज तक सभी काव्यशास्त्रियों ने शास्त्रीय सिद्धांतों का ही अनुकरण किया है। कालिदास एक ऐसे कवि हैं जो केवल काव्य की रचना ही नहीं करते अपितु काव्य की समीक्षा भी करते चलते हैं। कुशल समीक्षक को परिभाषित करते हुए आपने कहा कि बुद्धिमान् समीक्षक वही है जो काव्यशास्त्र के पारम्परिक निकष पर काव्य को कस कर उसका विश्लेषण करता है। यह कर्म वही समीक्षक कर सकता है जो तत्वान्वेषी हो।

अपने अध्यक्षीय भाषण में शिवजी उपाध्याय, पूर्व प्रतिकुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने कहा—कालिदास ऐसे प्रजापति रूप कवि थे जो सम्पूर्ण विश्व के हैं। वे अपनी कृतियों से जाने जाते हैं। उनका व्यक्तित्व उनकी कृतियों में अन्तर्निहित होता है। आपने कहा परमात्म तत्व ब्रह्मानंद सहोदर के बारे में जितना भी कहें वो कम होगा। इसलिये वेदांतियों ने इसे अनिर्वचनीय कह दिया तथा साहित्यशास्त्रियों ने सहृदयेन सम्वेद्य। एकदेशीय व्यापक वस्तु की अपेक्षा सार्वदेशीय व्याप्य वस्तु की आंशिक रूप से सार्थकता है। कोई भी लक्षण एक देशीय रूप से यदि सार्थक है तो सर्वदेशीय रूप से वह सार्थक नहीं है। क्योंकि काव्य लोकोत्तर है, उसको किसी लक्षण में बांध कर सीमित नहीं किया जा सकता।

इस सत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के रीडर डॉ० सदाशिव कुमार द्विवेदी ने 'भोजराज की कृतियों में कालिदास के सन्दर्भ' विषयक अपने शोध पत्र में स्पष्ट किया कि भोजराज ने शास्त्रीय सन्दर्भों में कालिदास के ६०७ पद्य उद्धृत किये हैं जिनमें से सर्वाधिक उद्धरण कुमारसम्भव से दिये हैं। नाटकों में सर्वाधिक पद्य अभिज्ञान शाकुन्तलम् के उद्धृत किये गये हैं। महाविद्यालय की डॉ० स्वरवन्दना शर्मा (अध्यक्षा, संगीत विभाग) ने 'कालिदास के पद्यों की सांगीतिक समीक्षा' विषयक शोध पत्र की सप्रयोग प्रस्तुति की। महाविद्यालय की ही संस्कृत विभागाध्यक्षा डॉ० कमला पाण्डेय ने 'रसगंगाधरे कालिदासीयसन्दर्भाः विषयक शोधपत्र प्रस्तुत किया। वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान की प्रवक्ता डॉ० अर्चना दूबे ने भी अपना शोधपत्र प्रस्तुति किया, सत्र का संचालन महाविद्यालय की डॉ० सुधा श्रीवास्तव (अध्यक्षा, मनोविज्ञान विभाग) ने किया।

द्वितीय सत्र–संगोष्ठी का द्वितीय सत्र **'पाश्चात्य समालोचकों की दृष्टि**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर केन्द्रित रहा, अध्यक्षता करते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के श्रमण विद्या संकाय के अध्यक्ष प्रो० राजीव रंजन सिंह ने कहा–कि पाश्चात्य एवं प्राच्य दृष्टिकोण ही भिन्न है। पाश्चात्य में सत्य व्यक्तिनिष्ठ है। भारत में सत्य समष्टि सापेक्ष है, स्वयं प्रखर है, प्रतिष्ठित है। संवेदना का जो प्रवाह हमें भारत में देखने को मिलता है–वह पाश्चात्य में नहीं है। क्योंकि यहाँ कवि भी व्यक्तिनिष्ठ नहीं होता है–आप्त होता है, जब तक वह व्यक्तिनिष्ठ है–तब तक असफल रहता है। जबकि पाश्चात्य में व्यष्टि को समष्टि में जोड़ने की दृष्टि अभी भी नहीं पायी जाती है।

महाविद्यालय की अंग्रेजी विभागाध्यक्ष डॉ० अनुराधा वैनर्जी ने अपने शोध निबन्ध में प्रकृति के शोषण के विरोध का स्वर कालिदास तथा शेक्सपीयर के माध्यम से स्पष्ट किया। उन्होंने कहा–कालिदास वाङ्मय में प्रकृति चेतना को उभारा गया है। प्रकृति का जैविक रूप है उसे हम भूल गए हैं। बल्कि समीक्षाकार उसके दर्शन पक्ष को सामने रखता है। षड्ऋतु का वर्णन कालिदास ने किया है। कालिदास चाहते हैं कि सभी ऋतु बनी रहे है जिससे मानव का विकास होता रहेगा। इसे कालिदास ने अपनी सजग-दृष्टि से देखा था। जिसे आज मानव भूल गया है। मेघदूत में यक्ष मेघ के माध्यम से प्रकृति के प्रति मानव को आकर्षित करता है। जिससे पर्यावरण सुरक्षित रहे। प्रकृति के प्रति मानव को सचेत करने का प्रयास कवि कालिदास ने मेघदूत में और ऋतुसंहार में किया है। केवल धर्म और काम के बल पर मोक्ष को आधार लेकर प्रकृति की समीक्षा से हम पर्यावरण को सुरक्षित नहीं रख सकते हैं।

तृतीय सत्र–राष्ट्रीय संस्कृत सगोष्ठी के दूसरे दिन का तृतीय सत्र **'टीकाकारों एवं कवियों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन'** पर केन्द्रित रहा। नयी दिल्ली से आई वक्ता डॉ० आभा कुलश्रेष्ठ ने संगोष्ठी के आयोजन की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि कालिदास को अनेकानेक टीकाकारों की दृष्टि से देखना वास्तव में कवि के काव्य में छुपे पड़े अनेक भावों, अनेक रहस्यों से परिचित होने का अवसर देता है। भारत को, भारतीयता को जानने के लिये कालिदास साहित्य का बारम्बार आलोड़न करना, उसका सतत मनन-चिन्तन करना हमेशा ही स्वागतार्ह है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्र की अध्यक्षा डॉ० विभारानी दुबे (रीडर, महिला महाविद्यालय का.हि.वि.वि.) ने अपने वक्तव्य में कहा कि समर्थ रचनाकार अपनी कृति के आधार पर पाठकों को अपने साथ लेकर चलना जानता है। कालिदास ने स्थापित किया कि रूप के संपर्क में जो भी आता है वही अलंकार बन जाता है। रूप की आह्लादकता मानसिक अनुभूति का विषय है, उसका वर्णन शब्दों से परे है। कालिदास का साध्य रूप सर्जना नहीं अपितु भारतीय संस्कृति के अनुसार वह चार पुरुषार्थ के समर्थक और लोकमंगल की भावना से युक्त हैं। उन्होंने नारी के रूप, आन्तरिक सरूप तथा उसके साध्य रूप का विश्लेषण किया।

इस सत्र में श्रीशिवशंकर मिश्र, डॉ० आभा श्रीवास्तव, डॉ० विवेक पाण्डे, कु. मनीषा तिवारी, कु. अभिलाषा त्रिपाठी, डॉ० शान्ता चटर्जी, श्रीमती विभा गुप्ता, डॉ० कृष्णा गोस्वामी, डॉ० तृप्तिरानी जायसवाल, डॉ० नाहीद आबिदी ने अपने शोधपत्रों के माध्यम से कालिदास साहित्य के विविध पक्षों पर अपने विचार प्रस्तुत किये। सत्र का संचालन डॉ० नन्दिनी वर्मा ने किया।

चतुर्थ सत्र–संगोष्ठी का चतुर्थ सत्र का केन्द्रीय विषय **आधुनिक कवियों की दृष्टि से कालिदास वाङ्मय का समीक्षात्मक अध्ययन** था। सारस्वत अतिथि के रूप में डा० भानु अग्रवाल (दृश्य कला संकाय, का.हि.वि.वि.) ने कालिदास के चित्रकला परिशीलन पर प्रकाश डालते हुए कहा–कालिदास ने एक चित्रकार का, एक कला समीक्षक का कार्य किया है। उनके नायक, नायिका चित्र के द्वारा विरहावस्था में अपनी मनोव्यथा को व्यक्त करते हैं, मालविकाग्निमित्रम् में उन्होंने चित्र के दोषपूर्ण होने के कारणों की चर्चा की है तथा शाकुन्तलम् के षष्ठ अंक में एक चित्र के द्वारा शकुन्तला का रूप ही नहीं सम्पूर्ण पटभूमि को भी स्पष्ट किया है। अध्यक्ष पद से बोलते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के वेद विभागाध्यक्ष-प्रो० युगल किशोर मिश्र ने कहा–शिक्षा के जिस अंश से मनुष्य प्राकृतिक वाधा-विपदाओं से लड़ता है–विज्ञान है और जिस अंश से प्रकृति से ऊपर उठ जाता है वह ज्ञान है, संस्कृत साहित्य में कालिदास–ज्ञान, विज्ञान के उच्च शिखर पर आसीन हैं, उन्होंने नारी पात्रों को जो उच्च स्तर, जो उदारता प्रदान की है–वह अन्यत्र दुर्लभ है, पार्वती के जन्म प्रसंग का उदाहरण देकर उन्होंने कहा-कालिदास

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने कन्या सन्तति को उच्च स्थान दिया है।

प्रो० अवधेश प्रधान (हिन्दी विभाग, का.हि.वि.वि.) ने पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में कालिदास की रचनाओं में सौन्दर्यबोध पर प्रकाश डाला उन्होंने कहा कालिदास के समय भारत बहुजातीय रहा है अत: कालिदास बहुजातीय सामाजिक प्रथाओं के अभ्यासी रहे हैं, वे पृथ्वी से लेकर अन्तरिक्ष तक मानव के गीत गाते रहे हैं। उनके काव्य में कांचन पद्मधर्मिता है जो मुरझाने वाली नहीं है। डॉ० कौशलेन्द्र पाण्डेय (संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, का.हि.वि.वि.) ने नौटंकी शैली में शाकुन्तल की प्रस्तुति पर प्रकाश डाला और १८८६ में बुलंदशहर से हाफिज मुहम्मद शाह कृत नौटंकी रूपान्तरण का उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त डा० हरिश्वर दीक्षित, डा० शशिकान्त मिश्र डॉ० अर्चना अग्रवाल, ज्योति सिंह, शिल्पा सिंह, संजय कुमार, वागीश राज शुक्ल, डॉ० पूनम पाण्डेय (व.क.म) तथा डा० सुमन जैन (व.क.म.) ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये। सत्र का संचालन डॉ० रचना श्रीवास्तव (अध्यक्ष-राजनीति शास्त्र, व.क.म.) ने किया।

समापन सत्र–इस द्विदिवसीय संगोष्ठी का समापन सत्र में सारस्वत अतिथि के रूप में काशी के प्रख्यात रंगकर्मी तथा साहित्य मर्मज्ञ राजेन्द्र उपाध्याय ने कालिदास के काव्य में प्रयुक्त प्राकृत भाषा पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि नाटक के विभिन्न पात्रों के स्तर के अनुसार भिन्न प्रकार की प्राकृत का प्रयोग कवि ने किया है। भारतीय संस्कृति में प्राकृत, पाली और अपभ्रंश भाषायें अभी भी विद्यमान हैं और इनके अध्ययन से इतिहास के अनेक प्रश्नों का समाधान हो सकता है। सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो० सुदर्शन लाल जैन (अध्यक्ष, कला संकाय) ने कहा–जो कुछ संस्कृत साहित्य है वह कालिदास का ही है। कालिदास में वाह सार है, प्राण है जो संस्कृति को, कवियों को निरन्तर प्रेरित करता है। कालिदास के नाटकों में वही भाषा प्रयुक्त हुई है जो जिस पात्र के लिये स्वाभाविक है। इस सत्र में स्वागत प्राचार्या डॉ० कुसुम मिश्रा ने किया, संगोष्ठी विवरण के साथ कृतज्ञता ज्ञापन संगोष्ठी की संयोजिका डा० कमला पाण्डेय ने किया तथा सत्र का संचालन डा० स्वरवन्दना शर्मा ने किया।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास के पद्यों की सांगीतिक समीक्षा

'काकु' के सन्दर्भ में

डॉ० स्वरवन्दना शर्मा*

कविकुलगुरु कालिदास की कलाकोमल वाणी स्वतः रागमयी है, अनुरागमयी है। उसे संगीतमय बनाने का, स्वरों से सजाने का प्रयत्न 'स्वर' की दो प्रसिद्ध व्याख्याओं-व्याकरण के अनुसार 'स्वयं राजन्त इति स्वराः' और संगीत की दृष्टि से 'स्वतो रञ्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते' के अनुसार स्वयं प्रतिष्ठित तो करता ही है, स्वयं रँग भी देता है, अर्थात् तन्मय बनाता है, आनन्दविभोर कर देता है। कालिदास 'रमणीय काव्य' के कर्ता हैं, इतना कहना ही पर्याप्त है, उन्हें अलग से नाटककार न भी कहा जाये तो कोई कमी नहीं मानी जाएगी, क्योंकि–'काव्येषु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला' प्रसिद्ध है।

भरतमुनिकृत 'नाट्यशास्त्र' भारतीय नाट्यपरंपरा का सर्वमान्य ग्रन्थ है, जिसमें नाट्य तथा रङ्ग से सम्बद्ध काव्य, शिल्प, संगीत, नृत्यादि ललितकलाओं के विस्तृत विवरण के साथ नाट्यसिद्धान्तों का मौलिक विवेचन प्राप्त होता है। चार प्रकार के अभिनय, गीत और वाद्यविधि, पात्रों की प्रकृति, भूमिका आदि विषयों पर भरत के आधिकारिक वचन अद्यावधि हमारा मार्ग निर्देश कर रहे हैं।

भरत ने अभिनय के चार प्रकार आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक बताते हुए वाचिक अभिनय को 'नाट्यस्येयं तनुः' अर्थात् नाटक का शरीर कहा है, साथ ही यह भी बताया है कि अंग और नेपथ्यादि तत्त्व वाक्यार्थ (वाचिक) की ही अभिव्यक्ति करते हैं। भरत के वचन इस प्रकार हैं –

आङ्गिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा।
चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः ।। ना.शा. ६/२४
वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता।
अङ्गनेपथ्यतत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्जयन्ति हि ।। ना.शा. १४/२

वाचिक अभिनय के अन्तर्गत 'पाठ्य' को इस प्रकार समझाया है–

* रीडर एवं अध्यक्षा, संगीत (गायन), व.क.म.।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाठ्यगुणानिदानीं वक्ष्यामः । तद्यथा—सप्त स्वराः, त्रीणि स्थानानि, चत्वारो वर्णाः, द्विविधा काकुः, षडलंकाराः, षडङ्गानि इति । x x द्विविधा काकुः । साकाङ्क्षा, निराकाङ्क्षेति । ना.शा. १७/९८ के बाद ।

क्रमशः सात स्वर, तीन स्थान, चार वर्ण, दो काकु, छह अलंकार और छह अंगों को बताते हुए एक ओर पाठ्य के ६ गुणों के अन्तर्गत 'काकु' को गिना है और दूसरी ओर पूरे अध्याय का ही नाम 'काकु स्वर-विधान' रखा है । (यह काव्यमाला संस्करण का १७वाँ अध्याय है, अन्य किन्हीं संस्करणों में १९वाँ अध्याय है ।)

अमरकोष के अनुसार 'काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः' अर्थात् शोक, भय आदि के कारण होने वाला ध्वनि का विकार 'काकु' है, जो स्त्रीलिंगी शब्द है । भरत ने काकु के बाद छह अलंकार (उच्च, दीप्त, मन्द्र, नीच, द्रुत, विलंबित) और छह अंग (विच्छेद अर्थात् विराम, अर्पण अर्थात् भराव, विसर्ग, अनुबन्ध, दीपन और प्रशमन) बताये हैं । ये सभी प्रत्यक्ष रूप से वाचिक अभिनय और परोक्ष रूप से आज के संगीत प्रयोग में भी भावाभिव्यक्ति की प्रक्रिया के पोषक तत्त्व हैं । विस्तार भय से केवल 'काकु' के साकांक्ष-निराकांक्ष स्वरूप का उल्लेख करूँगी । सामान्य व्यवहार में भी प्रश्न, चिन्ता, विस्मय, उपालंभ आदि भावों की अभिव्यक्ति में हमारी आवाज नीचे से ऊपर की ओर उठती जाती है यही साकांक्ष काकु है, और सामान्य वाक्य या उत्तर देने में आवाज़ ऊपर से नीचे की ओर आती है, यह है निराकांक्ष काकु ।

भरत के काकुविवेचन के अतिरिक्त हम संगीत के विद्यार्थियों को शार्ङ्गदेव कृत 'संगीत-रत्नाकर' का काकु-वर्णन पढ़ने का भी अवसर मिलता है, जो भरत के वाचिक प्रसंग से अलग हटकर संगीत के अपने तत्त्वों और प्रस्तुति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । रत्नाकर के अनुसार—

छाया काकुः षट्प्रकारा स्वर-रागान्यरागजा ।। सं.र. ३/१२०
स्याद् देश-क्षेत्र-यंत्राणां
x x x ।

अर्थात् काकु छाया स्वरूप है, जो स्वरकाकु, रागकाकु, अन्यरागकाकु, देशकाकु, क्षेत्रकाकु और यंत्रकाकु इस तरह छह प्रकार की है । स्वरकाकु अर्थात् स्वर की अपनी छाया, रागकाकु अर्थात् राग की छाया दिखाने वाला विशेष स्वरसमूह या स्वरप्रयोग, अन्यरागकाकु अर्थात् जब किसी एक राग की छाया अन्य राग पर पड़े,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देशकाकु अर्थात् जहाँ अलग-अलग स्थानों की गायन शैली की छाया राग की प्रस्तुति पर पड़े (यह प्रकार लोकसंगीत में अत्यन्त स्पष्ट है, या घरानों के रूप में भी समझ सकते हैं), क्षेत्र अर्थात् शरीर से संबद्ध कण्ठध्वनि की छाया क्षेत्रकाकु है, यंत्र अर्थात् वाद्यध्वनि की विशेषता यंत्रकाकु है।

भरत के अनुसार वाचिक अभिनय में भावसंप्रेषण का सबसे प्रभावशाली कारक है–'काकु' और शार्ङ्गदेव के अनुसार स्वर, राग, अन्यराग, देश, कण्ठ, वाद्य इन सबकी अपनी विशेष छाया या प्रभाव को व्यक्त करने वाली है 'काकु'।

मेरे इस शोधपत्र 'कालिदास के पद्यों की सांगीतिक समीक्षा : 'काकु' के सन्दर्भ में' के अन्तर्गत अपने उन निजी अनुभवों को बाँटना चाहती हूँ, जो विगत पाँच वर्षों से 'ज्ञान-प्रवाह' (वाराणसी का सांस्कृतिक अध्ययन केन्द्र) द्वारा प्रायोजित संस्कृत नाटकों के लिये संगीत-रचना करते समय मुझे प्राप्त हुए।

संयोग से कालिदास के तीनों नाटकों के वाराणसी में मंचन से संबंधित चित्र संगोष्ठी-कक्ष में लगाये गये हैं, जिसमें व.क.म. परिवार के पूर्व और वर्तमान सदस्य सहयोगी थे (स्व. प्रो. प्रेमलता शर्मा के निर्देशन में मालविकाग्निमत्रम् १९७५ तथा प्रो. कृष्णकान्त शर्मा के निर्देशन में अभिज्ञानशाकुन्तलम, २००१, २००२ तथा विक्रमोर्वशीयम्-२००३)।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् की नान्दी **'या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या'** शिव की प्रत्यक्ष अष्टमूर्ति की स्तुति है। शरणागत सामाजिकों की कल्याण-कामना करने हेतु राग चुना कल्याण अर्थात् यमन। 'स्थापक' द्वारा एकल अभिनय के लिये मुक्त स्वर रचना और अष्टमूर्ति के प्रतीक आठ नर्तक-नर्तकियों द्वारा नृत्य के लिये तालबद्ध रचना की।

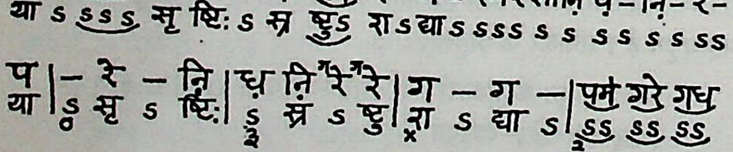

शाकुन्तलम् के ही पंचम अंक में नेपथ्य से रानी हंसपदिका का उलाहना भरा गीत है–**'अहिनव महु लोलुओ तुअं'**। भीमपलासी राग के संचार में उलाहना का भाव लाने के लिये त्रिताल में बाँधते हुए **'प ग॒ म ध। ध प ऽ** यह 'सम' (ताल की पहली मात्रा) का स्थान लीक से हट कर रखा और अंतिम पंक्ति का 'कहं' (क्यों) भी आरोही स्वरों में रखा, जिससे प्रश्नार्थक भाव स्पष्ट हो सके।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ध प ग म | पसां निसां ध प | प ग म ध | ध - प -
अ हि न व | मुऽ हुऽ लोऽ | लु ओ ऽ तु | अं ऽ ऽ ऽ
२ ० ३ x

प सांनि नि नि | निसां मंग रेंसां रें | नि सां प ध | म प गम पनि
म हु अ र | विऽ ऽ म्हऽ रि | ओ ऽ सि नं | ऽ क हेऽ ऽऽ

विक्रमोर्वशीयम् की नान्दी 'ईश्वर' की स्तुति है, जो राग भूप (भूपाली) में रची गयी है भूप अर्थात् राजा भी ईश्वर ही है। 'व्याप्य स्थितं रोदसी' में 'रोदसी' अर्थात् द्युलोक और पृथ्वी के भाव को उभारने के लिये तार सप्तक का 'सा' और बाद में मध्य सप्तक का 'रे ग' लेते हुए स्वर रचना की। 'यस्मिन् ईश्वर इत्यनन्य विषयः शब्दो यथार्थाक्षरः' का समापन गांधार पर किया, तानपूरे के मन्द्र षड्ज के तार से 'स्वयंभू गांधार' गूँजता है, और ईश्वर का वाचक 'प्रणव' अर्थात् 'ॐ' भी **अनुरणनात्मक** ही है। अनुरणनात्मक ॐ को स्वयंभू गांधार में अनुभव करना अपने आप में रोमांचक अनुभूति है।

पग - पग - पग प - - ग पसांधसां - - धप गरे - ग - -
व्या ऽ प्य ऽ स्थितं ऽ ऽऽ रोऽऽऽ ऽ ऽ दऽ सी ऽ ऽ ऽ ऽ

रे - ग - प गरेसा - सारेग रे ग - - -
श ऽ ब्दो ऽ य थाऽऽ ऽ र्थाऽऽ क्ष रः ऽ ऽ ऽ

इसी के चतुर्थ अंक में विरही राजा बादल और बिजली को राक्षस और अपनी बिछुड़ी प्रिया के रूप में देखता है। आसमान में दूर तक फैले इन्द्रधनुष के लिये 'दूराकृष्टं' में राग मियाँमल्हार के कोमल निषाद का लंबा प्रयोग किया है, वहीं 'कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्' में बिजली की क्षणिक चमक के अनुरूप तीव्रगति का स्वर प्रयोग है।

रे रे प प म प - म प पनि धनि धनि धनि निम प -
सु र ध नु रि दं ऽ दू ऽ रा ऽ ऽ ऽ. कृ ऽ ष्टं ऽ

प रें प रें सां रें - नि - सां - निसांरें - नि सां
क न क नि क ष ऽ स्नि ऽ ग्धा ऽ विऽऽ ऽ द्यु ऽत्

वहीं हाथी से विनती करने वाला राजा 'अहं त्वां पृच्छामि' कहते हुए सारा अहंकार छोड़ कर घुटने टेक रहा है, यह भाव राग देश में अवरोही स्वरों से व्यक्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया है।

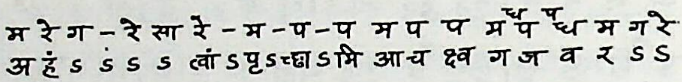

राजा द्वारा 'संगमनीय मणि' लेकर भी वापस रख देना चरम दुःख का अवसर है, अतः 'मन्दारपुष्पैरधिवासितायां' को राग शिवरंजनी में रखा। मुनि के उद्बोधन के बाद एक लता में उर्वशी की झलक दिखते ही राजा अपनी दुरवस्था उस लता से कहने लगता है। प्रिया-विरह का दुःख होते हुए भी लता को देख कर दुःख की छवि (shade) बदल गई चरम दुःख इसीलिये से थोड़ा भाव परिवर्तन लाने के लिये राग बदलकर किरवानी चुना 'लते प्रेक्षस्व' के लिये। 'मणि' के प्रभाव से लता के पुनः उर्वशी के रूप में बदलते ही सारा दुःख समाप्त, इस परिवर्तन के लिये ताल का सहारा लेते हुए वाद्यसंगीत की प्रसिद्ध द्रुतगत् का प्रयोग वास्तव में आह्लादकारी रहा।

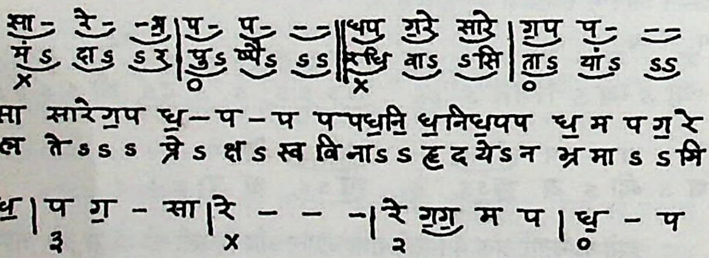

इस प्रकार 'नान्दी' से 'भरतवाक्य' तक यथामति यथाशक्ति संगीत संयोजना करते समय मेरा यही प्रयास रहा कि महाकवि की वाणी के अर्थ को, संगीत के तत्त्वों स्वर और लयं के माध्यम से अधिक से अधिक स्फुट करते हुए 'वागर्थ-प्रतिपत्ति' की उनकी भावना से भावित हो सकूँ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भोजराज में कालिदास सन्दर्भ

डॉ० सदाशिव कुमार द्विवेदी*

११वीं शताब्दी ईस्वी के प्रसिद्ध आलङ्कारिक धाराधिपति महाराज भोजदेव की साहित्यशास्त्रीय कृतियों-शृङ्गारप्रकाश (१-३६ प्रकाश) तथा कण्ठाभरणालङ्कार में महाकवि कालिदास की सात में से छः कृतियों के लगभग ६६० पद्य विभिन्न शास्त्रीय तत्त्वों के स्पष्टीकरण हेतु उद्धृत किए गए हैं। इन तत्त्वों में साहित्यशास्त्र तथा व्याकरणशास्त्र सम्बन्धी तत्त्वों का प्राधान्य है।

महाकवि कालिदास की सात कृतियों में से आचार्य भोजराज ने सर्वाधिक २४१ पद्य अष्टसर्गात्मक महाकाव्य कुमारसम्भव से उद्धृत किए हैं। आचार्य भोजदेव कुमारसम्भव के ९ से १७ पर्यन्त अकालिदासीय सर्गों से सर्वथा अपरिचित हैं, क्योंकि इनमें से किसी भी सर्ग के पद्य को आचार्य अपनी कृतियों में शास्त्रीय विषयों के समालोचन हेतु प्रस्तुत नहीं करते। आचार्य भोजराज ने कुमारसम्भव के अनन्तर सर्वाधिक २२७ पद्य रघुवंश महाकाव्य से उपहृत किए हैं। इसके अतिरिक्त नाटकों में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' से ८६ पद्य; तथा ४१ पद्य 'विक्रमोर्वशीय' से आचार्य भोजराज ने लिए हैं। मेघदूत से ५१ पद्य तथा 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक से एकमात्र पद्य (३.२३) शृंङ्गारप्रकाश के अन्तिम प्रकाश ३६वें प्रकाश में उद्धृत मिलता है। इस विवरण से स्पष्ट है कि आचार्य भोजदेव को सर्वाधिक अभ्यास 'कुमारसम्भव' का था और उसके अनन्तर 'रघुवंश' का। आ. भोजराज को नाटकों में सर्वाधिक प्रिय अभिज्ञान-शाकुन्तल है, तदनन्तर विक्रमोर्वशीय। कालिदास विरचित खण्डकाव्यों में हमें केवल मेघदूत के पद्य भोजराज की कृतियों में उद्धृत मिलते हैं।

शृङ्गारप्रकाश के प्रारम्भिक छः प्रकाशों मे आचार्य भोजदेव सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र का विवेचन किया है। उनके मत में काव्यरचना के सामर्थ्य की प्राप्ति हेतु यत्नशील प्रत्येक कवि व्याकरणज्ञान के बिना सफल नहीं हो सकता। इन प्रकाशों में आचार्य भोजदेव ने काव्यलक्षण तथा साहित्यतत्त्व का प्रतिपादन करने के अनन्तर व्याकरणशास्त्र अर्थात् अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य के विषयों—प्रकृति, प्रत्यय, अव्यय, तद्धित,

---

* रीडर-संस्कृत विभाग-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास; निपात, उपसर्ग, उपसर्जन, कर्मप्रवचनीय, प्रातिपदिक, कारक' आदि का विस्तार से इनके भेद-प्रभेदों का सोदाहरण विवेचन किया है।

एतदुच्छ्वसितपीतमैन्दवं सोढुमक्षममिव प्रभारसम् ।
मुक्तषट्पदविरावमञ्जसा भिद्यते कुमुदमानिबन्धनात् ।।कु.सं. ८.७०.

यहाँ हिमालय पर विहार करते समय रात्रि में खिलते हुए कुमुदपुष्प को देख भगवान् शङ्कर भगवती पार्वती को सम्बोधित कर कहते हैं कि भौरों की गूँज से भरा तथा खिलता हुआ कुमुदपुष्प ऐसा प्रतीत होता है, मानों चाँदनी का अत्यधिक पान करने के कारण इसका पेट शब्द करता हुआ फट गया है। यहाँ कर्मकर्ता है 'कुमुदपुष्प' तथा क्रियापद है 'भिद्यते'। कुमुद को भेदनक्रिया का कर्म होते हुए भी कर्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है[१]–'कुमुदं भिद्यते' इस रूप में यह उद्रिक्तकर्मांश है, क्योंकि कुमुद में भेदन क्रिया प्रत्यक्षानुभूत है। अर्थात् भगवान् शङ्कर कुमुदपुष्प के खिलने की क्रिया को प्रत्यक्ष देख रहे हैं और भगवती पार्वती के सम्मुख उसका वर्णन भी कर रहे हैं।

भोजदेव के अनुसार सम्प्रदान का लक्षण है–''क्रियाकार्यत्वेनावधारितं कर्मणा क्रियया वा संयोगं यदनुभवति तत् सम्प्रदानम्''। सम्प्रदान तीन प्रकार का होता है–ददाति कर्मव्याप्य, कर्ममात्रव्याप्य तथा क्रियाव्याप्य।

सम्प्रदान कारक के ददातिकर्मव्याप्य भेद को आचार्य पुनः दो प्रकार का मानते हैं–स्वत्वस्याऽनिवृत्ति तथा स्वत्वस्यानिवृत्ति भेद से। स्वत्वस्यानिवृत्ति रूपी भेद के उदाहरणरूप में आचार्य भोजदेव कुमारसम्भव के अष्टमसर्ग का निम्न श्लोक उद्धृत करते हैं–

चुम्बनादलकचूर्णदूषितं शङ्करोऽपि नयनं ललाटजम् ।
उच्छ्वसत्कमलगन्धये ददौ पार्वतीपवनगन्धवाहिने ।। सं.८.१९

अर्थात् चुम्बन के समय भगवती पार्वती के केशों में लगे चूर्ण से दूषित हुए अपने तृतीय नेत्र को (दोषनिवारणार्थ) भगवान् शङ्कर कमल-सदृश सुगन्धवाले पार्वती के मुखपवन तक पहुँचा देते हैं।

शृङ्गारप्रकाश के तृतीय प्रकाश में आचार्य भोजदेव ने प्रकरणतत्त्व का विवेचन किया है। उनके मत में प्रकरण का लक्षण है–

---

१. कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः । ३.१.८७ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"प्रबन्धाङ्गमवान्तरवाक्यं प्रकरणम्"–प्रबन्धवाक्य के अङ्गभूत अवान्तर कथानक के प्रतिपादक वाक्य प्रकरण कहलाते हैं । अर्थदृष्ट्या प्रकरण को आचार्य–प्रस्तुत, कल्पित और आकस्मिक तथा शब्ददृष्ट्या-एकवाक्यात्मक, अनेकवाक्यात्मक तथा एकानेकवाक्यात्मक भेद से तीन-तीन प्रकार का मानते हैं ।

प्रस्तुत नामक अर्थप्रकरण के 'अङ्ग' संज्ञक भेद के उदाहरण में आचार्य भोजदेव ने कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग में लगभग ५४ पद्यों (५.३० से ५.८४ कु.सं.)[२] में उपनिबद्ध तपश्चर्या में लीन भगवती पार्वती तथा ब्रह्मचारिवेषधारी भगवान शङ्कर के मध्य संवाद को उद्धृत किया है । आचार्य भोजदेव के अनुसार–

"तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती ।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ।।कु.सं.५.३१.
इत्यादेः प्रकरणार्थस्य कथा शरीरत्वमवगम्यते ।"

अर्थात् भगवती पार्वती द्वारा आगे बढ़कर ब्रह्मचारी का स्वागत किए जाने से यह प्रकरणार्थ कथा का ही अङ्ग प्रतीत होता है । यह प्रकरण उभयनिष्ठ शृङ्गार की उत्पत्ति में परिणत होता है । इसको प्रस्तुत मानने में हेतु है इसकी मुख्य कथानक से अन्विति या प्रसङ्गोपस्थिति । ऐसा इसलिए माना जा सकता है कि पार्वती जिन भगवान् शङ्कर की प्राप्ति के निमित्त तपश्चर्या में लीन है वे ही ब्रह्मचारिवेश धारण कर उपस्थित हो जाते हैं । चूँकि शङ्करविषयक कथा पहले से चली आ रही है, अतः इसको न आकस्मिक माना जा सकता है और न हि कल्पित प्रकरण ।

आचार्य भोजदेव ने मेघदूत के निम्न पद्य को शृङ्गारप्रकाश के आठवें प्रकाश से लेकर ३१वें प्रकाश तक विभिन्न सन्दर्भों में सात बार उद्धृत किया है–

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्त्रेणास्त्रद्रवमविरलोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती ।
सङ्कल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ।। मेघ.१००

सापेक्षशब्दशक्तिप्रकाश नामक अष्टम प्रकाश के प्रारंभ में–तत्रोद्भूतसम्बन्ध-व्यतिरेकाणां पदार्थानामितरेतरप्रत्याकाङ्क्षा व्यपेक्षा-इस पदार्थों की 'व्यपेक्षा' को त्रिविध माना—आभिधानिकी; नैयायिकी तथा नैषेधिकी । अभिधानिकी व्यपेक्षा है–ता स्वाभिधानिकी तावद्यत्र द्वयोः साधर्म्यार्थमावृत्या विभक्तिभेदेन च विशेषणविशेष्यनिर्देशः, अर्थात् जहाँ दो पदार्थों में साधर्म्य की आवृत्ति करते हुए विभप्रि और श्रुति के भेद

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से विशेषण विशेष्य का निर्देश किया जाय वहाँ आभिधानिकी व्यपेक्षा है । इसके उदाहरण के रूप में आचार्य ने मेघदूत के 'अङ्गेनाङ्गं प्रतनु' पद्य को उद्धृत किया है । इस पद्य में 'अङ्गेन तथा अङ्गम्' पदवाच्य विशेष्यपदार्थों में साधर्म्य की आवृत्ति के वाचक विशेषण पदों के मध्य विभक्ति और श्रुति का स्पष्ट भेद है । इन दोनों विशेष्य पदार्थों व इन के विशेषणों का इस प्रकार निर्देश होने से यह पद्य आभिधानिकी व्यपेक्षा का भेद बना ।

शृंगार प्रकाश के चतुर्दश प्रकाश में पुन: चिन्तानुबन्ध के विवेचन प्रसङ्ग में आचार्य ने उपर्युक्त पद्य को उद्धृत किया है । आचार्य के अनुसार चिन्ता का लक्षण है–दृष्टश्रुतानुमितेषु प्राप्ति-परिहारार्थमुपायपरिभावना मनश्चिन्ता । इसकी पाँच अवस्थायें हैं–जन्म, अनुबन्धन, प्रकर्ष, सम्पर्क तथा अनुगमन । 'अङ्गेनाङ्ग' पद्य को आचार्य ने चिन्तानुबन्ध का उदाहरण बनाया है । यक्ष द्वारा अपने शरीर में विरहावस्था जनित-विकृतियों को देखकर यक्षी की विरहावस्था का अनुभव किया जा रहा है । यह पद्य प्रवास नामक भेद के प्रसंग में शृंगार प्रकाश में अनेक बार उद्धृत हुआ है ।

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् के 'अस्या: सर्गविधौ' पद्य को आचार्य ने ५ बार उद्धृत किया है । इसमें निहित 'वितर्क' नामक तत्त्व का विभिन्न सन्दर्भों में विवेचन करने के प्रसङ्ग में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के पद्यों को भी आचार्य अनेक सन्दर्भों में उदाहरणरूप में देते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आचार्य भोजदेव ने व्याकरणशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र-विषयक तत्वों का शृङ्गारप्रकाश में विशद विवेचन किया है तथा उदाहरणरूप में कालिदासीय काव्यों के उद्धरण दिए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि काव्याध्ययन के अनन्तर उनमें उपलब्ध विषयों को आधार बना आचार्य ने शास्त्रीय परिभाषाओं व उनके भेदप्रभेदों का अपूर्व निर्धारण किया ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि कालिदास साहित्य के मम्मटादि परवर्ती टीकाकारों ने भोजदेव को नहीं पढ़ा था । क्योंकि भोजदेव द्वारा कालिदासीय काव्यों का जो वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है, उससे ये टीकाकार सर्वथा अपरिचित हैं । हमारा विश्वास है कि यदि ये टीकाकार भोजदेव की कृतियों में निहित कालिदास साहित्य के सूक्ष्म विवेचन पर दृष्टिपात करते तो इनकी टीकाओं का स्वरूप ही बदल जाता ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न–इति कालिदासः

प्रो० रहस विहारी द्विवेदी*

"न–इति कालिदासः" पङ्क्तिरियं राजशेखरस्य, या तेन काव्यमीमांसायाः पदवाक्यविवेकाख्ये चतुर्थेऽध्याये कविभावकयोरेकत्वपार्थक्य-निरूपण-प्रसङ्गे व्यलेखि। सन्दर्भस्तावदेवम्–

"कः पुनरनयोर्भेदो यत्कविर्भावयति भावकश्च कविः" इत्याचार्याः। यथाहुः–

'प्रतिभातारतम्येन प्रतिष्ठा भुवि भूरिधा।
भावकस्तु कविः प्रायो न भजत्यधमां दशाम्॥

"न–इति कालिदासः" पृथगेव हि कवित्वाद् भावकत्वं भावकत्वाच्च कवित्वं स्वरूपभेदाद्विषयभेदाच्च।

यदाहुः–

'कश्चिद्वाचं रचयितुमलं श्रोतुमेवापरस्तां
कल्याणी ते मतिरुभयथा विस्मयं नस्तनोति।
न ह्येकस्मिन्नतिशयवतां सन्निपाते गुणाना-
मेकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः'॥

रघुवंशादिरचयितुः कालिदासस्य न कश्चित्काव्यशास्त्रीयो ग्रन्थः प्राप्यते। राजशेखरेणात्र सङ्केतो न व्यधायि यत्कस्माद् ग्रन्थादियं तदवधारणा तेन प्रत्यपादि। अस्मात् सन्दर्भादव्यवहितप्राग् राजशेखरेण "**प्राणनामनिलेनेति**" शाकुन्तलात् (७/२) "**अनेन सार्द्धमिति**" '**तथागतायामिति**' च रघुवंशात् (५/५७,८२) '**हरस्तु तावत्परिवृत्तधैर्यमिति** कुमारसम्भवात् (६/६७) चेमानि पद्यान्युद्धृतानि, ततश्चाग्रिमे कविभावकविवेचने तन्मतं प्रस्तूयते। एतेन प्रतीयते यद् '**न-इति कालिदासः**' इति पङ्क्तौ पूर्वोक्तरचनाकतुरिव कालिदासस्योल्लेखो राजशेखरेणाकारि।

राजशेखरः कालिदासीयस्य मतस्य पुष्टौ '**कश्चिद्वाचं रचयितुमिति**' पद्यमुद्धरति। एतत्पद्यं कालिदासस्योपलब्धासु रचनासु कुत्रापि न प्राप्यते। किन्तु डा०पी०एन०

* संस्कृत विभागाध्यक्ष-रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, म.प्र.।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कवठेकरप्रभृतयो विद्वांस: पद्यमिदं कालिदासस्यैव मत्वा सन्दर्भेऽस्मिन् परामृशन्ति[१] चेदिदं कालिदासस्यैव पद्यं तर्हि कालिदासो यदा कविभावकयो: पार्थक्यं स्वीकरोति, तदा पद्यस्यास्य द्वितीयायां पङ्क्तौ **'कल्याणी ते मतिरुभयथा विस्मयं नस्तनोति'** इति पङ्क्तौ तु तन्मतस्य पुष्टिर्न भवति, तथापि कथं राजशेखरेणेदं पद्यमुदाहृतम् । अस्मिन् प्रसङ्गे डा० कवठेकरो वक्ति–'वास्तव में कालिदास के इस पद्य के द्वितीय चरण में दोनों का एकत्र सहभाव आश्चर्यजनक रूप में स्वीकृत कर लिया गया है। अत: राजशेखर द्वारा उपस्थापित कालिदासीय मत कवि और भावक को अलग-अलग दृढ़तापूर्वक सिद्ध करने में सक्षम नहीं है[२]' । अत: प्रश्नोऽयं समुदेति यद् राजशेखरसदृशेनाचार्येण कालिदासमतसम्पुष्टौ किं सामर्थ्यहीनं पद्यमिदमुदाहृतम्, उताहो द्वितीयापि युक्ति: कालिदासीयमतपोषणे समर्था ?

पद्यस्यास्य तिस्र: पङ्क्तयस्तु कालिदासीयं मतं पुष्णन्त्येव द्वितीयाया: **'कल्याणी ते मतिरुभयथा विस्मयं नस्तनोतीति'** पङ्क्ते: 'धन्यास्ति सा कथयति प्रियसङ्गमेनेति' पद्यवद् व्यङ्ग्यानुकल्पने व्यञ्जनाशिरोमणे: कवे: कालिदासस्यास्य पद्यस्य द्वितीयमिदं चरणं तन्मतपुष्टौ सर्वातिशायित्वेन तिष्ठति ।

प्रतिभाविभागे **'कवेरुपकुर्वाणा कारयित्री, भावकस्योपकुर्वाणा भावयित्रीति'** राजशेखरस्य मतं विद्यते । कविभावकयोरैक्यनिरूपणेऽन्येषामाचार्याणां मतं राजशेखरो लिखति । 'न इति कालिदास:' इत्यव्यवहितप्राग् लिखिते मते राजशेखरस्यापि मतं सन्निहितमिव प्रतीयते । तेन यो भावक: सन् कविर्भवति स एवोत्तम: सिद्ध्यति **(भावकस्तु कवि: प्रायो न भजत्यधमां दशाम्[१])** । राजशेखरो भावक: सन्नपि कविर्विद्यते तत्कृतय एवात्र प्रमाणम् । यदि कालिदास: स्वमतेनैव भावकत्वेन नावतिष्ठति तर्हि गम्भीर: प्रश्न: समुदेति । पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे य: कनिष्ठकाधिष्ठित:, आनन्दवर्धनप्रभृतिभिर्महत्तमै: काव्यशास्त्राचार्यै: **'द्वित्रा: पञ्चषा वा महाकवय: कालिदासाद्या:'** इत्युक्त्वा यस्य महाकवित्वं महता कण्ठेन स्वीकृतम्, स भावको नास्तीति कथममन्द: कश्चित् ब्रूयात् । राजशेखरोऽपि प्रशस्तमहाकविरूपेणैव कालिदासमुद्धरति । अत: स्वत एव सिद्धं यद् राजशेखर: कालिदासं भावककविं मनुते ।

वस्तुत: काव्योन्मेषे तदनुभूतौ, अर्थात् सहृदये चोभयत्र भावकत्वमपेक्ष्यते **'कवेरन्तर्गतभावं भावयन्भाव उच्यते[३] । योऽर्थो हृदयसंवादी तस्य भावो**

---

१. राजशेखर का भावकत्व विचार । १९७३ वर्षीयायां जबलपुरविश्वविद्यालयस्य राजशेखरसङ्गोष्ठ्यां पठितं डॉ० प्रभाकरनारायणकवठेकरस्य शोधपत्रम् ।

२. तत्रैव, पृ० ३ । ३. नाट्यशास्त्रे, ७/२ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रसोद्भवः । शरीरे व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना' ।[१] कवेरन्तर्गतमुन्मिषितं भावमेव भावकस्तन्मयो भूत्वाऽनुभवति । पुनरिदमप्यवधेयं यत्प्रतिभावान् कविरपि भवति भावकोऽपि भवति । कारयित्री भावयित्री चेत्युभौ भेदौ प्रतिभाया एव । कालिदासीयस्य मतस्यायमभिप्रायो भवितुमर्हति यत्काव्यास्वादकात्कविर्भिन्नो भवति । कालिदासीयस्य भावकविषयकस्य मतस्य स्पष्टीकरणार्थं तन्मतेन भावकस्य स्वरूपं किमिति विचारणीयं तदर्थमत्र यत्नः क्रियते–राजशेखरमतं तु तस्य काव्यशास्त्रीये ग्रन्थे काव्यमीमांसायां करतलामलकवत्स्पष्टं विद्यते । कालिदासस्य काव्यशास्त्रीयग्रन्थाभावे तन्मतावबोधाय तस्योपलब्धा रचना एव साधनम् । तस्य गंभीरं साहित्यरत्नाकरमवगाह्य भावकगुणरत्नान्यन्वेष्टुं पार्यते । कालिदासेन तु व्यङ्ग्यभङ्ग्याऽनेकत्र कवेश्च भावकस्य च गुणा उपात्तीकृताः[२] ।

कालिदासमतेन भावका द्विधा–

प्रथमे सन्तः, अपरे च मूढाः । सदसद्व्यक्तिहेतवः सन्तः परप्रत्ययनेयबुद्धयश्च मूढाः । यथाप्रसङ्गं, भावकगुणविषयकं तन्मतं विकीर्णं विद्यते । तद्यथा सदसद्व्यक्तिहेतुत्वं,[३] बुद्धिप्रत्ययता,[४] कौतूहलमेकाग्रता[५], विद्वत्ता,[६] कृतित्वं,[७] तत्त्वान्वेषित्वं[८], पर्युत्सुकत्वं च[९] ।

---

१. नाट्यशास्त्रे, ७/७ ।

२. मम सागरिकायाः२/१,२ अङ्कयोः प्रकाशितौ कालिदासाभिमता आलोचकगुणाः, कालिदासाभिमतः काव्यहेतुश्चेतिसन्दर्भौ ।

३. रघुवंशे, १/१० ।

४. तत्रैव, १/१० ।

५. काव्यश्रोतुरवस्थितिः कालिदासेन वर्णिता, सा चैवम्–
**'रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम् ।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतहली'** ।।
**'तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली'** ।। (रघु०,१५/६५-६६)

६. **आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्** । (शाकु० १/१२)
परिषदेषा दृष्टरसप्रबन्धा । (विक्रमोर्व० १/१२)

७. **वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती** । (शाकु० १/१२)

८. **किं नु खलु गीतमेवंविधमाकर्ण्य-इष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि वा** ।

९. **रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि** ।। (शाकु० ५/१२)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजशेखरमतेन भावका: चतुर्धा भवन्ति[१]–

१. अरोचकिन: २. सतृणाभ्यवहारिण: ३. मत्सरिण: ४. तत्त्वाभिनिवेशिनश्च । 'न-इति कालिदास:'—इति राजशेखरकथनस्यालोके कालिदासराजशेखरयोर्भावकगुणावधारणायास्तुलनाऽपि विदुषां मोदाय भविष्यति । कालिदासरचनासु–

'तं सन्त: श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतव: ।
हेम्न: संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धि: श्यामिकाऽपि वा ।।

(रघुवंशे, १/१०)

'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्' (मा० १/२) इति चोभयत्र **सन्त:**—इति शब्द: समानरूपेण प्राप्यते । द्विर्बुद्धं भवति इति न्यायाद् वारद्वयं व्यक्तीकृतं तथ्यं कालिदासीयां भावनां दृढं पुष्णाति । अत्रावधेयं यद्

---

१. अन्येषामाचार्याणां मतान्युद्धरन् भावकविषये राजशेखर एवं विचारं करोति–**'ते च द्विधाऽरोचकिन:, सतृणाभ्यवहारिणश्च इति मङ्गल: । कवयोऽपि भवन्ति इति वामनीया: । चतुर्द्धा यायावरीय:, मत्सरिणस्तत्त्वाभिनिवेशिनश्च । तत्र विवेकिन: पूर्वे तद्विपरीतस्तु ततोऽन्तरा इति वामनीया: ।**

अरोचकिता हि तेषां नैसर्गिकी ज्ञानयोनिर्वा । नैसर्गिकींहि संस्कारशतेनाऽपि रङ्गमिव कालिकां ते न जहाति । ज्ञानयोनौतु तस्यां विशिष्टज्ञेयवति वचसि रोचकितावृत्तिरेव इति यायावरीय: ।

किञ्च सतृणाभ्यवहारिता सर्वसाधारणी । तथा हि व्युत्पित्सो: कौतुकिन: सर्वस्य सर्वत्र प्रथमं सा । प्रतिभाविवेकविकलाऽपि न गुणागुणयोर्विभागसूत्रंपातयति । ततो बहु त्यजति बहु च गृहणाति । विवेकानुसारेणहि बुद्धौ मधु निष्पन्दते ।

मत्सरिणस्तु प्रतिभातमपि न प्रतिभातं परगुणेषु वाचंयमत्वात् । स पुनरमत्सरी ज्ञाता च विरल:, तदुक्तम्–

कस्त्वं भो: कविरस्मि काप्यभिनवा सूक्ति: सखे ! पठ्यतां
त्यक्ता काव्यकथैव सम्प्रति मया कस्मादिदं श्रूयताम् ।
य: सम्यग्विविनक्ति दोषगुणयो: सारं स्वयं सत्कवि:
सोऽस्मिन्भावक एव नास्त्यथ भवेद्दैवान्न निर्मत्सर: ।।

तत्त्वाभिनिवेशी तु मध्येसहस्रं यद्येकस्तदुक्तम्–

शब्दानां विविनक्ति गुम्फनविधीनामोदते सूक्तिभि:
सान्द्रं लेढि रसामृतं विचिनुते तात्पर्यमुद्रां च य: ।
पुण्यै: सङ्घटते विवेक्तृविरहादन्तर्मुखंताम्यतां
केषामेव कदाचिदेव सुधियां काव्यश्रमज्ञो जन:' ।।

(काव्यमीमांसा-चतुर्थोऽध्याय:, पदवाक्यविवेक:)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजशेखरेणोद्धृते–**'एकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः'** इति पद्येऽपि रघुवंशसदृशमेव कनकस्य (हेम्नः) एवोपमानं काव्यकृते प्रयुक्तं विद्यते ।

रूपकाणां प्रस्तावनासु–

'आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्' । (शाकु० १/२)

'अभिहितोऽस्मि विद्वत्परिषदा' । (पा० १/१)

'परिषदेषा पूर्वेषां कवीनां दृष्टरसप्रबन्धा' । (विक्र० १/२)

एवं रूपेण कालिदासेन भावकगुणेषु विद्वत्ताऽपि निर्दिष्टा । प्रायेण कालिदासस्य नायिका कवितोपमा नायकाश्च भावकोपमा इति सुधियोऽनुभवन्त्येव । एतादृश एकः प्रसङ्गो भावकगुणानुसन्धानायोपस्थाप्यते । अभिज्ञान-शाकुन्तले दुष्यन्तस्य शकुन्तलावलोकने रूपमाधुर्यपानप्रसङ्गे भावका द्विधा विभक्ताः । एके कृतिनोऽपरे तत्त्वान्वेषिणश्च ।

'वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती' ॥

(शाकु० १/२१, १/२)

'असंशयमि'त्यादौ **'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः'** इत्युक्त्वा कालिदासः सत्सु भावकेषु शतशः शास्त्रानुसारिकाव्यशिल्पाद्यभावे तेषामन्तः करणप्रवृत्तय एव प्रमाणमिति स्वीकरोति । भरतादिशास्त्र-कृत्यप्रत्ययनेयबुद्धिता तु मूढाख्ये भावके भवति । **'वयं तत्त्वान्वेषादि'**त्यादिना राजशेखरमतं संवदति–

'गुणादानपरः कश्चिद्दोषादानपरोऽपरः ।

गुणदोषाहृतित्यागपरः कश्चन भावकः' ॥ (काव्यमी., पृ. ३६)

यद्यपि राजशेखरमतेन तत्त्वाभिनिवेशी भावको मध्ये सहस्रं भवति,स च भावकेषु महत्तमः । कालिदासेन स्वकीये श्रव्ये काव्ये रघुवंशे सदसद्व्यक्तिहेतवो भावका रेखाङ्किताः, तेषु राजशेखरस्य तत्त्वाभिनिवेशिषु प्रायेण साम्यमेव । किन्तुरूपकविधायां कालिदासस्य विचारः किञ्चित् पृथग् विद्यते । **'आपरितोषाद् विदुषामि'**त्यत्र **'मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिरि'**त्यत्र **'वयं तत्त्वान्वेषादि'**त्यत्र च काव्यशास्त्ररूढिमनुसरतो भावकान् कालिदासो नाभिनन्दति ।

वस्तुतः काव्यशास्त्रज्ञो भूत्वापि वागर्थप्रतिपत्तिनिपुणोऽतनुवाग्विभवोऽमन्दः (प्रतिभावान्) कविरनन्यपरतन्त्रामेव भारती सृजति । स च काव्यशास्त्रपरिखासु चक्षुषी निमील्य न व्रजति । काव्यशास्त्रीयनियमानामनुपालनेऽपि महतः कवेर्भारती सहृदयहृदयाह्लादक्षमं स्वादु अर्थवस्तु निष्यन्दमाना सती तस्यालोकसामान्यं परिस्फुरन्तं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिभाविशेषमभिव्यनक्ति। तां मन्दाः परप्रत्ययनेयबुद्धयो वा द्विषन्तु नाम, किन्तु कृतिनः (कुतूहलिनः) तत्स्वादुसर्वस्वं पिबन्ति। एवं सन्तस्तत्त्वान्वेषिणोऽपि (शास्त्रज्ञाः) तदभिलाषिमनस्काः सन्तोऽन्तःकरणप्रवृत्तीः प्रमाणं मत्वा तां स्वपरिग्रहक्षमां कल्पन्ते, श्रेष्ठत्वमपकृष्टत्वं वा निर्धारयन्ति।

वस्तुतो यस्य कवेः काव्यशास्त्रं प्रति दृढमाग्रहो भवति तादृशो भावककविः शतशः काव्यशास्त्रानुसारि काव्यं रचयति। एवं कृतेऽपि चेत्तस्य तद्रचनायां परमाह्लादोऽनुभूयते तत्कल्याणी मतिः कालिदासे विस्मयं तनोति, यतो हि कविबुद्धिरनन्यपरतन्त्राऽपि सती सहृदयहृदयाह्लादे समर्थेति व्यामोहस्तत्र भवति। अत एव मालविकाग्निमित्रे (शास्त्रीयनियमाननुसृत्य यस्य विधानिर्धारणे समालोचका विवदमाना दृश्यन्ते) **'मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिरिति'** कालिदासो वदति। एवं कालिदासमताद् राजशेखरमते वैभिन्त्र्यं विद्यते। तस्मात्तेन **'न–इति कालिदासः'** इति लिख्यते।

कविः स्वकल्पलतान्तरैः गीतिक्षममर्थबन्धं विचिन्त्य विच्छित्तिमयैर्वर्णैः कृतसंस्कारया, चरितार्थया, सूनृतया, कान्त्या, मधुरया च गिरा आस्वादयोग्यां कल्याणीं रचनां करोति। यस्यामन्योन्यशोभाजननात् साधारणो भूषणभूष्यभावो विराजते, या च प्रयत्नात् सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेनैकत्र सौन्दर्यदिदृक्षयेव काव्यस्रष्टुर्निर्मितिर्भवति। सा च तत्किं येन (निमित्तेन) शृण्वतां मनो हर्तुमलं न स्यात्। यस्याश्च मधुरान् शब्दान् निशम्य रम्याण्यर्थजातानि वीक्ष्य सुखितोऽपि भावकः पर्युत्सुको भवति, तच्चेतसा च किमप्यबोधपूर्वं नूनं स्मरति। एवंविधां तां कवी रचयति; ततश्च कुतूहली प्रातर्हिमनिष्यन्दिनी निर्वाता वनस्थलीव तच्छ्रवणैकाग्रो भावक आनन्दमनुभवति। अत्र लोकवादोऽपि विद्यते–

'कविः करोति काव्यानि रसं जानन्ति पण्डिताः' ।

अतो भावके कवौ च भेदो भवतीति कालिदासीयं मतमुचितमेव। काव्योन्मेषे वर्ण्यविषयानुव्याहरणभावनायुतत्वात्कविर्भावको भवति। कवौ काव्योन्मेषो भवति भावके च तदनुभूतिः। यदि भावकशब्दात् शास्त्रानुगामित्वमभिप्रेतं तदा तथाविधकविरेवाधमां दशां प्राप्नोति, शास्त्रनियन्त्रितबुद्धित्वात्। कविस्तु भावकोऽवश्यं भवति; किन्तु भावकोऽपि कविः स्यादित्यावश्यकं नास्ति। अत एव कालिदासेनोक्तम्–

'एकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः' । इति।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काव्यशास्त्रीय आलोक में कालिदास के श्रृंगार बिम्ब

डा० रचना शर्मा*

संस्कृत काव्यशास्त्र में रति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाव मानकर उसकी गणना समस्त भावों में प्रथम की गयी है तथा रतिभाव से सम्पन्न 'श्रृंगार रस' को रसराज की संज्ञा प्रदान की गयी है। रतिभाव या श्रृंगार रस की प्राथमिकता एवं श्रेष्ठता का कारण यही है कि काम संसार के प्राणिमात्र की समस्त जातियों में सुलभ और सर्वजनसंवेद्य भाव है। ध्वन्यालोककार के शब्दों में श्रृंगाररस समस्त संसारियों का नियमत: अनुभव विषय है और अपनी कमनीयता के कारण सब रसों में प्रधानभूत है, साथ ही इसकी परिधि भी व्यापक है। मम्मट देवादिविषयक रति को भाव और कान्ताविषयक रति को श्रृंगार कहते हैं। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि कान्ता ही नहीं देव, गुरु, मुनि, नृप, पुत्र देश आदि सबके प्रति होने वाला प्रेम रति के नाम से बोधित होता है। अत: रति सर्वमान्य प्रेम का पर्याय है। **'विभावानुभावव्यभिचारि-संयोगाद्रसनिष्पत्तिः** भरतमुनि के इस रससूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य मम्मट काव्य में आठ रसों[१] की स्थिति मानते हैं और श्रृंगार को प्रथम स्थान देते हुए श्रृंगार के सम्भोग और विप्रलम्भ दो भेद स्वीकार करते हैं। इनमें सम्भोग श्रृंगार के परस्पर अवलोकन, आलिङ्गन, अधरपान, चुम्बन आदि से असंख्य भेद हो जाते हैं[२] तथा विप्रलम्भ श्रृंगार के अभिलाषा, विरह, ईर्ष्या, प्रवास और शाप-इन पाँच हेतुओं के आधार पर पाँच भेद स्वीकार करते हैं[३]।

---

* प्रवक्ता-संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय चुनार, मीरजापुर।

१. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥२७॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥२८॥
काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास

२. तत्र श्रृंगारस्य द्वौ भेदौ, सम्भोगो विप्रलम्भश्च। तत्राद्यः परस्परावलोकनालिङ्गनाधरपानपरिचुम्बनाद्यनन्तभेदत्वादपरिच्छेद्य इत्येक एव गण्यते। काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास।

३. अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पञ्चविधः।
काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाकवि कालिदास के काव्य में इन शृंगार प्रकारों की अत्युत्तम व्यञ्जना हुई है। विशेषकर शृंगार में कालिदास की निपुणता देखकर जयदेव ने उन्हें 'कविता कामिनी का विलास' कहा है। रति के विलासपूर्ण चित्रों से कालिदास की कविताएँ भरी पड़ी हैं। रतिभाव को आस्वादनावस्था तक पहुँचाने के लिए विभाव (आश्रय या आलम्बन) का बिम्बात्मक वर्णन प्रथम आवश्यकता है। रति क्षेत्र में उद्दीपन विभाव प्रकृत भाव को विशेष रूप से उभारता है। नायक व नायिका की परस्पर रति को बढ़ाता है। देशकाल का वर्णन भी उद्दीपन का रूप है, जिसके अन्तर्गत परिस्थिति, प्रकृति आदि आती है। अनुभाव आश्रयगत के शारीरिक विकार हैं जिससे पाठक को आश्रय के हृदयस्थ रतिभावों का ज्ञान होता है। रति के क्षेत्र में लज्जा, आवेग, जड़ता, औत्सुक्य, चपलता, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं जिन्हें कालिदास ने कुशलता से व्यञ्जित किया है। सम्भोग शृंगार में विशेष रूप से नायक-नायिका का परस्पर अनुराग अभिव्यक्त होता है।

रति के एकाएक उत्पन्न होने का सुन्दर उदाहरण 'कुमार सम्भव' में मिलता है। समाधिरत शिव जब नेत्र खोल कर उन्मादक परिवेश में पार्वती के विश्व-सम्मोहक स्वरूप को देखते हैं तो एकाएक उनकी दृष्टि किंचिद् अधीर होकर मानसिक विचलन के साथ पार्वती के बिम्बाधर पर जा टिकती है–

हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ।।[१]

इस श्लोक में शिव के मन में एकाएक पैदा होने वाले रतिभाव का उत्तम बिम्बात्मक वर्णन हुआ है। 'किंचित्परिलुप्तधैर्यत्व' को पुनः अङ्ग बिम्ब 'चन्द्रोदयारम्भ' में 'अम्बुराशिः' की हलचल से मूर्त किया गया है।

कालिदास के नाटकों में संयोग के विलासपूर्ण चित्र उपलब्ध होते हैं। भ्रमर की चेष्टा के बहाने 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' में रति का सम्पूर्ण चित्र **'चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं'**[२] में उत्कीर्ण है। जहाँ भ्रमर के माध्यम से कामिजन के व्यवहार दृष्टि, स्पर्श, मृदुकथन, अधरपान आदि के बिम्ब उपस्थित किये गये हैं। भ्रमर की स्वाभाविक चेष्टाएँ अलग बिम्ब बना रही हैं किन्तु यहाँ वास्तविक उपभोग्य चित्र रति से परिपूर्ण है। कालिदास रति के चित्र प्रस्तुत करने में बड़े प्रगल्भ हैं, मालविकाग्निमित्र में राजा और मालविका का यह चित्र द्रष्टव्य है–

१. कुमारसम्भव, ३/६७ ।
२. अभिज्ञानशाकुन्तल १/२२ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हस्ते कम्पयते रुणद्धि रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः
स्वौ हस्तौ नयति स्तनावरणतामालिङ्ग्यमाना बलात् ।
पातुं पक्ष्मलनेत्रमुन्नमयतः साचीकरोत्याननं,
व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुखं निर्वतयत्येव मे[१] ।

मेघदूत यद्यपि विरह का काव्य है किन्तु उसमें कवि की विलास भावना ने स्मृति व मानवीकरण के आधार पर अनेक संयोग रति के चित्र प्रस्तुत किये हैं । अलका के भवनों का वर्णन करते-करते यक्ष वहाँ के रति विलास का स्मरण करने लगता है ।

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां,
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपाम्
ह्रीमूढानां भवति विफल प्रेरणा चूर्णमुष्टिः ।।[२]

यहाँ रति सम्बन्धी अनेक क्रिया-कलाप बिम्बों में उपस्थित करते हुए यक्षिणी नारियों की लज्जा का सुन्दर चित्रण किया गया है ।

संयोगरति वर्णन के साथ ही विप्रलम्भ रति वर्णन में कालिदास ने असाधारण कुशलता प्रदर्शित की है । उनकी सभी रचनाओं में प्राय: वियोग के चित्र मिलते हैं जिनमें 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' और 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटकों में नायकगत वियोग का सुन्दर चित्रण है । महाकाव्यों में अजविलाप और रतिविलाप में भी विप्रलम्भ के बिम्ब मिलते हैं । मेघदूत तो विप्रलम्भ का ही काव्य है । इसका आरम्भ और अन्त दोनों वियोग से ही होता है । दुष्यन्त, पुरूरवा और यक्ष की विरह-व्यथा के बिम्ब जैसे कालिदास ने दिये हैं अन्य कवियों की रचनाओं में ऐसे नायकगत बिम्ब दुर्लभ हैं । मेघदूत में यक्ष अपनी कल्पना से विरहिणी यक्षिणी के जो चित्र प्रस्तुत करता है वे भी बड़े प्रभावी हैं ।

आचार्य मम्मट के अनुसार विप्रलम्भ श्रृंगार के अभिलाष, विरह, ईर्ष्या, प्रवास, और शाप ये पाँच भेद होते हैं । कालिदास के विप्रलम्भ श्रृंगार परक वर्णन में ये सभी स्थितियाँ प्राप्त होती हैं । उनके तीनों नाटकों में प्रेमविवाह होते हैं अतः अभिलाष के बिम्बों के अच्छे अवसर कवि को प्राप्त हुए हैं । मालविकाग्निमित्र में

१. मालविकाग्निमित्र ४/१५ ।
२. मेघदूत, 'उत्तरमेघ' ७ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इरावती के मान (ईर्ष्या) का अच्छा चित्रण हुआ है। मेघदूत में प्रवास और शाप के सुन्दर वर्णन हैं। अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद व जड़ता–इन प्रेम दशाओं के सुन्दर बिम्ब रतिचित्रों में कालिदास ने संजोये हैं। मेघदूत में प्रवास विप्रलम्भ में अंगमालिन्य, वस्त्रमालिन्य, एकवेणीधारण, विश्वास-उच्छ्वास, रोदन, भूमिपतन आदि नायिकागत अवस्थाओं का बड़ा समीचीन वर्णन मिलता है। विरह में अङ्गों का असौष्ठव, सन्ताप, पाण्डुता, दुर्बलता, अरुचि, अधीरता, अनालम्बनता, तन्मयता, उन्माद तथा मूर्च्छा–ये दश काम दशाएँ देखी जाती हैं। कालिदास के काव्यों में ये सभी अवस्थाएं बिम्बित है। रामगिरि पर बैठा यक्ष स्वयं कृशकाय, विरह की प्रतिमूर्ति बना हुआ है। उसकी इस कृशकाय अवस्था को 'कनकवलयभ्रंश-रिक्तप्रकोष्ठ' के बिम्ब से व्यञ्जित किया गया है। यक्ष अपनी पत्नी की कल्पना कर अपने वियोग का जो चित्र प्रस्तुत करता है वह रतिभाव को उभयनिष्ठ बनाकर, काव्य में विप्रलम्भ चित्रण को सम्पूर्णता प्रदान करता है। अभिलाष विप्रलम्भ का चरम निदर्शन मेघदूत में मिलता है। यक्ष को विश्वास है कि उसकी विरह दशा के बिम्बात्मक वर्णन से मेघ उसकी प्रिया को अवश्य पहचान लेगा।

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढ़ोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्॥[१]

दिन-रात रोने से यक्षिणी की सूजी हुई पलकें, गरम आहों से उड़े हुए रङ्ग वाले होंठ, हथेली पर टिका हुआ, रुखी अलकों से कुछ-कुछ छिपा हुआ उदास चेहरा विरहिणी के दैन्यतापूर्ण विरह अवस्था का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है[२]–यक्षिणी की इस दीनता का पाठक पर करुण प्रभाव होता है। इसीप्रकार के अनेक विरह बिम्ब कवि ने प्रस्तुत किये हैं। यक्षिणी कभी व्याकुल मन से देवताओं की पूजा करती है, कभी कल्पना से यक्ष का विरह-व्याकुल चित्र बनाती है। रामगिरि पर्वत पर रहता हुआ यक्ष अपनी नवोढा पत्नी के लिए इतना व्याकुल है कि उसे इस बात की चिन्ता होती है कि आषाढ़ बीतते ही जब सावन आयेगा तो उसकी प्रिया की व्याकुलता कितनी बढ़ जायेगी। साथ ही सावन में बादलों को देखकर सभी अपनी प्रियतमाओं

---

१. मेघदूत, उत्तरमेघ–२३

२. ,, ,,—२४।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के निकट हो जाते हैं, परन्तु यक्ष उस समय अपनी प्रिया के निकट नहीं रह पायेगा इस सन्दर्भ में स्वयं को अभागा मानने वाले यक्ष के माध्यम से महाकवि ने ईर्ष्या विप्रलम्भ का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है ।

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्तेपथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ।।[१]

'पराधीनवृत्तिः' शब्द द्वारा यहाँ अन्यों के प्रति जो ईर्ष्याभाव व्यञ्जित है वह स्मरणीय है ।

महाकवि ने प्रवास विप्रलम्भ के भी अतुलनीय उदाहरण रचे हैं । प्रेमियों का हृदय तो मिलने की आशा पर ही टिका रहता है । प्रवास के दिनों में नायिका का अपनी मैना से वार्त्तालाप विप्रलम्भ के चरमोत्कर्ष को अभिव्यक्त करता है । यक्षिणी मलिनवसन अङ्ग में वीणा रखकर पति के नाम वाले गीत गाती है, किन्तु भावावेग में निकले आँसुओं को तारों पर से पोंछते-पोंछते स्वरों के आरोह-अवरोह को भूल जाती है । विरह के प्रथम दिन से ही देहली पर पुष्पगणना करती हुई यक्षिणी–इस प्रसङ्ग में उल्लेखनीय है–

शेषान्मासान् विरहदिवस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः ।
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः[२] ।

विरहिणी यक्षिणी के लिए शापवशात् गवाक्षोंसे छन कर आती चन्द्रमा की किरणें भी उष्णाता दे रही हैं । इस विषम अवस्था से यक्षिणी की पलकें भारी हो जाती हैं और बदली के दिन में अधखिली कमलिनी की भाँति न जागती हैं न सोती हैं । शाप विप्रलम्भ के सन्दर्भ में निम्न बिम्ब अविस्मरणीय है जिसे स्वयं 'काव्यप्रकाशकार' ने भी उद्धृत किया है–[३]

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ–८ ।
२. वही–उत्तरमेघ–२७ ।
३. मेघदूत उत्तरमेघ–२७ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः[१] ।।

विरही यक्ष प्रकृति के पदार्थों में कहीं भी प्रिया के दर्शन दुर्लभ देख चित्र-रचना में प्रिया की कमनीय काया को निरखना चाहता है । वह उपकरणों के अभाव में पत्थर पर गेरू से मान करती प्रिया का चित्र बना उसको मनाने के लिए चरणों में पड़ना चाहता है किन्तु अश्रुप्रवाह से दृष्टि अवरुद्ध हो जाती है । निर्दयी देव (अनवसर में अश्रु प्रवाहित कर) चित्र में भी संयोग नहीं होने देता ।

मेघदूत ही नहीं कालिदास की समस्त रचनाओं में विरह के अनेक बिम्ब देखे जा सकते हैं जहाँ रतिभाव का पूर्ण परिपाक हुआ है । राजा दुष्यन्त के भी विरह चित्र अत्यन्त सजीव हैं । यक्ष की भाँति दुष्यन्त का भी कनकवलय खिसकता रहता है जो कृशता की व्यञ्जना करता है । कंगन की मणियाँ गर्म आँसुओं से भीगने के कारण विवर्ण हो गयी हैं, कारण हर रात आँखों से आँसू बहते रहते हैं । इससे राजा का रात्रि जागरण सूचित होता है । भुजबन्ध को वह बार-बार ऊपर सरकाता है, लेकिन वह इतना ढीला हो चुका है कि पुनः कलाई पर सरक आता है ।

अतएव स्पष्ट है कि कालिदास ने शृंगार के संयोग और विप्रलम्भ–दोनों के स्पष्ट बिम्ब प्रस्तुत किये हैं, जिसमें शृंगार रस की अभिव्यञ्जना अपने चरम पर पहुँची है । शृंगार के साथ ही आपके काव्यों में हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत आदि का भी पूर्ण परिपाक हुआ है । कालिदास प्रकृति तथा भावों के अनुपम चितेरे तो हैं ही; संवेदनाओं को थामने पर भी आचार्यों की कसौटी पर पूर्णतया खरे उतरते हैं ।

●

---

१. काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृष्ठ १२६ ।

२. मेघदूत, उत्तरमेघ–४७ ।

३. अभिज्ञानशाकुन्तलम् –३/१० ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रसगङ्गाधरे कालिदासीय-सन्दर्भाः

डा० कमला पाण्डेया*

यद्यपि मनन-तरितीर्ण-विद्यार्णवः पण्डितराजो जगन्नाथः स्वकीये रसगङ्गाधराख्ये लक्षणग्रन्थे काव्य-मीमांसां कुर्वन् ध्वनिगुणाद्यलङ्कारादि-लक्ष्यत्व-योग्यं स्वरचितमेव पद्यं उदाहरणरूपेण प्रस्तोतुं प्रतिजानीते-**'नर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किञ्चिद्'** इति; तथापि शास्त्रविचार-प्रवाह-प्रसङ्गे यत्र-तत्र तेन कालिदासों यथा संदृब्धः तथा दिङ्मात्रविचारो विधीयते । तथाहि–

रसगङ्गाधरस्य प्रथम आनने रसनिरूपण प्रसङ्गे–'अभिनवगुप्त-मम्मट-भट्टादि-ग्रन्थस्वारस्येन भग्नावरणाचिद्-विशिष्टो रत्यादिः स्थायीभावो रसः' इति प्रतिपादयति ग्रन्थकृत् । पुनश्च तत्रैव-नव्यास्तु परेतु इत्यादि मतान्तरं प्रस्तुवन् 'दुष्यन्तः शकुन्तला-विषयक-रतिमान्' 'शकुन्तला दुष्यन्त-विषयक-रतिमती' इत्येतद् वचोभिः कालिदासीयम् अभिज्ञानशाकुन्तमधिकृत्य युक्तियुक्तविचारपूर्वकं तेषां मतं निरस्य स्वकीयं मतम् उपस्थापयतीति तत्रैव विस्तरेण निभालनीयम् ।

अपि च, **वागर्थाविव सम्पृक्तौ**....(रघु. १.१) इत्यत्र चित्रमीमांसाकृद् अप्पयदीक्षितो रसध्वनिम् अङ्गीकुरुते निरतिशय-प्रेमशालिता-व्यंजनात् । यतो हि अत्र गौरीगिरीशयोः वागर्थवद् नित्यसम्बद्धत्वात् तत्कारणीभूता रतिः प्राधान्येनं व्यज्यते । अत इदं पद्यं संयोगशृङ्गारध्वनेरुदाहरणम् ।

तं खण्डयितुं पण्डितराज आह–'तद् ध्वनिमार्गानाकलननिबन्धनम्' ध्वनिसिद्धान्तविरुद्धमितिभावः । यतोहि अस्मिन् श्लोके शंकरपार्वतीविषया रतिः अपुष्टा, कालिदासविषया रतिरेव प्राधान्येन व्यज्यते । अतः पार्वतीपरमेश्वर-विषयक-शृङ्गारस्तु तत्पोषकः, अतएव तदङ्गतया रसध्वनिरिति न व्यवह्रियते । शृङ्गारस्य व्यङ्ग्यत्वेऽपि अत्र कविनिष्ठरतिभावाङ्गतया अलङ्कार्यत्वविरहात् । अतएव पद्यमिदं भावध्वनेरुदाहरणम् ।

अपि च; **एवं वादिनि देवर्षौ** (कु.सं. ६/८४) इतिपद्यमुद्धरन् लज्जाभावध्वनिं प्रतिपादयति सः । तथाहि–पार्वतीविवाह-निर्णयाय अङ्गिराऋषिः हिमवदन्तिकं शिवेन प्रेषितः । तस्मिन् ऋषौ प्राङ् निर्दिष्टं शिव सन्देशं वदति सति, पितुर्हिमालयस्य पार्श्वे

---

* संस्कृतविभागाध्यक्षा, वसन्तकन्यामहाविद्यालये ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समीपेस्थिता पार्वती कुमारी-जन-सुलभ-स्वविवाह-वृत्त-श्रवणजलज्जया नतानना सती स्वकरस्थितलीलाकमलस्य पत्राणि गणयामास ।

अत्र पर्वत्या वदननमनं लीला कमलगणनं च कुमारी-स्वभावादपि सम्भवतीति न झटित्येव तद्व्यापारद्वयं लज्जाया भावगोपन-रूपाया अवहित्थाया वा व्यञ्जने क्षमम्। किन्तु अस्या इदं व्यापारद्वयम् स्वाभाविकम् उत भावान्तर प्रयुक्तम्' इति जिज्ञासायां विवाहवृत्तान्तवर्णनात्मकस्य प्रकरणस्य पर्यालोचनेन किञ्चिद् विलम्बेन लज्जा वा अवहित्था वा व्यभिचारिभाव संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यं क्रमस्य स्फुटं प्रतीयमानत्वात्।

एवं द्वितीय आनने **क्वसूर्य प्रभवो वंशः** (रघु १/२) इति श्लोकः पूर्वाचार्यैः मम्मटभट्टैर्निदर्शनाऽलङ्कारस्य उदाहरणत्वेन उरीकृतः । तथाहि-सूर्याद् उत्पन्नो रघुवंशः क्व, स्वल्पग्राहिणी मम गतिश्च क्व । अनयोर्महद् अन्तरमिति भावः । अहम् मोहाद् अज्ञानवशाद् दुस्तरं सागरम् उडुपेन लघुनौकया तर्तुमिच्छामि । अत्र 'मम मत्या रघुवंशवर्णनस्य कामना लघुनौकया सागरसंतरणेच्छा' इति अर्थप्रतीत्या निदर्शना । यतो हि उपात्तयोः पदार्थयोः वाक्यार्थयोश्च औपम्यपर्यवानी अभेदो अत्र अस्ति ये नाम केचिद् ललितालंकारस्य उदाहरणत्वेन इमं श्लोकं साधयन्ति तेषामपि खण्डनं करोति पण्डितराजः । तन्मते ललितालंकारोऽपि निदर्शनायामेव अन्तर्भूतः ।

अपि च **असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टे** (कु०सं० १/३१) इत्यत्र अलङ्कार-सर्वस्वकारो विभावनां साधयति । मैवमित्याह पण्डिराजः । अत्र प्रथमे तृतीये च चरणे न्यूना भेदरूपकम् असम्भृतमङ्गयष्टेर्मण्डनम्, पुष्प व्यतिरिक्तं कामस्य अस्त्रं च वयः' इति अंशयोः न्यूनाभेदरूपकम् । उपमेये बाल्योत्तरवयसि उपमानस्य मण्डनस्य अस्त्रस्य च अभेदारोपाद् रूपकम् । तत्र असम्भृत-पुष्प-व्यतिरिक्त-पदाभ्यां क्रमशः तत्तद् उपमानापेक्षया उपमेये न्यूनत्वबोधनाद् न्यूनाभेदरूपकम् । अनासवाख्यं मदस्य करणम् इति तात्पर्यात् द्वितीय-चरणे तु प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा वर्तते ।

मृगयश्च दर्भाङ्कुर... (रघु १३/२५) इति पद्येऽस्मिन् अलङ्कारसर्वस्वकृत् काव्यलिङ्गं स्वीकरोति । कुवलयानन्दकृदपि तदनुमोदते । उभौ खण्डयन् पण्डितराजः कथयति-तत्रानुमानालङ्कारस्यैव युक्तत्वात् ।

अपि च; **दर्पणे च परिभोगदर्शिनी** (रघु १९/२८) इति पद्ये अप्पय दीक्षितोक्तं लज्जाशब्दप्रयोगेऽपि तस्याः स्वविभावाऽनुभावाभ्यां रसाऽनुगुणाऽभिव्यक्तिरूपो ध्वनिः इति वचनम् उपहसनीयं साधयता पण्डितराजो निगदति "ध्वनिकार आनन्दवर्धनो लोचनकारोऽभिनवगुप्तश्च ईषद्वाच्यवृत्तिस्पृष्टस्यापि व्यङ्ग्यार्थस्य ध्वनिव्यपदेश-हेतुतां निराकुरुतः । अतएव पद्येऽस्मिन् लज्जापदेनाऽभिहितस्य प्रकारान्तरेण व्यङ्ग्यस्यापि त्रपाभावस्य न ध्वनिव्यपदेशहेतुत्वम्" इत्यलमतिविस्तरेण ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टीकाकारों की दृष्टि में मेघदूत

शिवशंकर कुमार मिश्र*

महाकवि कालिदास की अमर कृति मेघदूत न केवल भारतीय साहित्य में अपितु विश्व-साहित्य में अपना अमूल्य स्थान रखती है। यों तो कवि की सभी कृतियां भाव प्रवणता एवं चिन्तनकी मसृणता से ओत-प्रोत हैं तथापि कवि की लोकप्रियता का सर्वाधिक ज्वलन्त व सुदृढ़ स्तम्भ मेघदूत ही है। सभी विदेशी व भारतीय भाषाओं में मेघदूत का अनुवाद होना कवि की गरिमा का प्रत्यक्ष निदर्शन है। इसमें कवि की काव्यमयी प्रतिभा एवं, मौलिकता, कमनीय कल्पना, परिष्कृत व विपुल शब्द सम्पत्ति, प्रवाहमयी एवं माधुर्यमंडिता भाषा शैली, कौशलपूर्ण अलंकार योजना, विदग्ध छन्द विधान, प्रकृति चित्रण एवं विरही व्यथा का पूर्ण पर्यवेक्षण परिलक्षित होता है। सन्देश काव्य की अभिनव व मौलिक सर्जना कर एक नवीन काव्यविधा व परम्परा का श्रेय मेघदूत को ही प्राप्त है।

''टीक्यते गम्यते ग्रन्थार्थोऽनया'' (वा०शि० आप्टे, पृ० ४१३) ग्रन्थार्थ के अवगमन के उपाय अथवा साधन को टीका कहा गया है। व्याख्या शब्द भी टीका का ही पर्यायवाची है। आलोचनात्मक समीक्षा की विभिन्न पद्धतियों में व्याख्यात्मक पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान कहा गया है। जब कवि वर्ग अपनी प्रतिभा, विवेकशीलता, अथवा ज्ञान के अथाह सागर द्वारा किसी ग्रन्थ, काव्य या शास्त्र आदि की रचना करते हैं तो विद्वत्समाज अपने ज्ञान-रूपी चक्षु द्वारा उसका सूक्ष्म परीक्षण कर अपने नवीन विचारों व कल्पनाओं के साथ कृति की स्पष्टार्थाभिव्यक्ति के लिए टीका की रचना करते हैं। किसी भी काव्य ग्रन्थ एवं शास्त्र के पूर्ण अर्थबोध के लिए टीकाएं नितान्त उपादेय एवं आवश्यक हैं।

काव्य के एक होने पर भी उस पर अनन्त टीकाएं लिखी जाती हैं। यहाँ यह प्रश्न स्वभावतः अन्तःस्थल में जागृत होता है कि किसी काव्य पर जब एक टीका लिख दी जाती है और उसके माध्यम से ही काव्य का अर्थ बुद्धिगोचर हो जाता है तब एक के बाद अन्य टीकाओं की रचना क्यों होती है ? इसका यही उत्तर है कि प्रत्येक टीकाकार काव्य को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखता है। किसी को उस

---

* शोधछात्र–संस्कृत विभाग, कलासंकाय, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काव्य में साहित्य की झलक मिलती है तो अन्य को दर्शन की, कोई व्याकरण का प्रतिबिम्ब देखता है तो दूसरा अलंकारों की छटा। कोई शब्द को महत्व देता है तो अन्य अर्थपरिपाक को, अत: जब टीकाकार अपने से पूर्ववर्ती टीका में उस विशिष्ट दृष्टिकोण का अवलोकन नहीं कर पाता तो उसी काव्य पर स्वयं टीका लिख अपने नवीन दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है। यह भी कहा जा सकता है कि कवि अपनी अनन्त प्रतिभा के कारण काव्य में इतने विशद, सुन्दर, सूक्ष्म भावों का समावेश कर देता है कि एक टीकाकार उन सभी भावो एवं कल्पनाओं को अपनी टीका मे चित्रित नहीं कर पाता। अत: एक के बाद एक टीकाकार काव्य के उन विभिन्न पहलुओं का निरीक्षण करते हुए उस टीका परम्परा मे एक-एक नवीन टीका की कड़ी जोड़ते रहते हैं। अत: काव्य रूपी अगाध जल की गहराई तक पहुँचने के लिए टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन परमावश्यक हो जाता है। जिस प्रकार भ्रमर विभिन्न पुष्पों से उनका रस ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार पाठक विभिन्न टीकाओं के तुलनात्मक अध्ययन से कवि के काव्यरूपी अन्त:स्थल में प्रवेश कर जाता है। **''हेम्न: संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धि: श्यामिकापि वा''** (रघु० १/१०) काव्य की उत्कृष्टता की परख टीकाओं द्वारा होती है। अत: काव्यज्ञान रूपी गुफा में प्रवेश करते हुए टीकाकारों की दृष्टि में मेघूदत का अध्ययन अत्यन्त उपादेय है।

क्र.सं.	टीका	पद्य	टीकाकार	काल	प्रकाशन
१.	बालप्रबोधिनी	१११	स्थिरदेव	९वीं शती उत्त.	वी.जी.परांजपे १९३५
२.	पञ्चिका	११२	वल्लभदेव	दशम शती पूर्वा.	ई.हुल्श लंदन १९११
३.	प्रदीप	११०	दक्षिणावर्त्तनाथ	१३वीं शती मध्य	त्रिवे.सं.सी. १९१९
४.	चारित्रवर्द्धिनी	१२२	चारित्रवर्द्धन	११७२-१३८५ ई.	कल.एशि.सो.
५.	कविप्रिया	११५	शाश्वत	१३३० ई०	जतीन्द्र विमल, कल. १९५३
६.	सञ्जीवनी	१२१	मल्लिनाथ	१४वीं शती. उत्त.	बनारस १८४१
७.	विद्युल्लता	११०	पूर्णसरस्वती	१४वीं उ.या.१५वी पू.	श्रीरंगम १९०१
८.	सारोद्धारिणी	१२५	सम्भवत:जैन टीकाकार	१४२०-१५६१ ई.	सं.साहि. परिषद १९३२-३४
९.	तात्पर्यदीपिका	११५	सनातनशर्म अथवा गोस्वामी	१५वीं शती उत.- १६वीं शती. उ.	जतीन्द्र विमल, कल. १९५३
१०.	सुगमान्वयावृत्ति	१२६	सुमतिविजय	१७वीं शती उ.-	पूना १९६५
११.	सुबोधा	११४	भरतमल्लिक	१८वीं शती.उ.	जतीन्द्र विमल, कल १९५१
१२.	मेघदूत टीका	११२	कृष्णपतिवहोरण	१७२० ई.	कुरूक्षेत्रवि. वि.१९७४
१३.	कात्यायनी	१२७	चरणतीर्थ महाराज	२०वीं शती पूर्वा	काशी सं.सीरीज.१९७९

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'टीक्यते गम्यते ग्रन्थार्थोऽनया' से स्पष्ट है कि किसी भी शास्त्र, ग्रन्थ अथवा काव्य के पूर्ण अर्थावबोध के लिए टीकाएं अत्यन्त उपादेय हैं। **'टीका गुरूणां गुरुः'** कथन अक्षरशः सत्य है। गुरु भी अपने सन्देह का निवारण टीकाओं द्वारा ही करते हैं। मेघदूत के टीकाकारों ने कोष ग्रन्थों व व्याकरणिक सूत्रों को उद्धृत करते हुए काव्य के गूढ़ार्थ को स्पष्ट किया है। अत्यन्त सरल शैली में लिखी गई 'स्थिर.' की व्याख्या में व्याकरणिक दृष्टि से शब्दों का स्पष्टीकरण व अलंकारों की छटा का प्राधान्य है। वल्लभदेव की टीका संक्षिप्त होते हुए भी अपनी प्राञ्जल एवं सारगर्भित भाषा से विद्वज्जनों का पूर्णतया अनुरञ्जन करती है। 'दक्षि'० की टीका का पाठ-भेद की दृष्टि से प्रमुख वैशिष्ट्य है। सबसे भिन्न पाठ देते हुए उसकी महत्ता को टीकाकार ने अत्यन्त सुचारु रूप से सिद्ध करने का प्रयास किया है। 'चारि०' टीका कई स्थलों पर 'दक्षि०' की टीका से समानता लिये हुए है। सरल व संक्षिप्त होते हुए भी यह टीका भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से पूर्णतया सशक्त है। 'पूर्ण०' ने विस्तृत व्याख्या पद्धति को अपनाया है। भाषा दुरूह है एवं व्याकरण सूत्रों व अलंकार सम्बन्धी उद्धरणों की दृष्टि से टीका स्वयं में अत्यन्त समृद्ध है। सुगम भाषान्वित 'मल्लि०' की टीका में अपने से पूर्ववर्ती टीकाकारों के मतों का उल्लेख यत्र-तत्र किया गया है। 'दोषा वाच्या गुरोरपि' को दृष्टिगत कर टीकाकार ने उन मतों का खंडन किया है जिसे उसकी प्रतिभा एवं विमर्शसम्पन्न बुद्धि उचित नहीं समझती। 'सना.' एवं शाश्वत ने भी संक्षिप्त व सरल भाषा द्वारा मेघदूत के भावार्थ का प्रकाशन किया है। सारोद्धारिणी टीका 'स्थिर०' की व्याख्या शैली की अनुकरणकर्त्री कही जा सकती है। 'सुमति०' ने प्रश्नोत्तर शैली को अपनाते हुए अत्यन्त सुगम भाषा में व्याख्या दी है। इन्होंने अनेक प्रक्षिप्त श्लोकों को भी व्याख्या से अलंकृत किया है। भरत टीका विस्तृत व्याख्या पद्धति को लिए हुए है पर व्याख्या में भावों की नवीनता परिलक्षित नहीं होती। टीकाकार ने अधिकांश स्थलों पर पूर्ववर्ती टीकाकारों के मतों को ही केचित् के द्वारा व्यक्त कर दिया है। फिर भी भरत की व्याख्या भावाभिव्यक्ति का उत्कृष्ट साधन है। 'कृष्ण०' ने यद्यपि विस्तृत व्याख्या नहीं दी फिर भी अधिकांश स्थलों पर भरत से समानता किये हुए हैं। टीका का प्रमुख वैशिष्ट्य एक शब्द के अनेक अर्थ दे जाना है–ऐसे स्थलों पर टीकाकार ने इस बात का ध्यान नहीं रखा है कि प्रसंगानुकूल कौन-सा अर्थ अभीष्ट है। 'चरणतीर्थ' की टीका में केवल भाव-प्रकाशन को ध्यान में रखा गया है। इसलिए शब्दार्थ के स्पष्टीकरण के लिए लोकभाषा में प्रयुक्त शब्दों का यत्र-तत्र प्रयोग दृष्टिगत होता है।

अर्थ की दृष्टि से टीकाओं का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कवि द्वारा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रयुक्त प्रत्येक शब्द अपने कलेवर में अर्थ की किस गहनता, विशदता, सुचारुता व पूर्णता को लिए हुए है, उसका अवलोकन टीकाओं के अध्ययन बिना नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ **'कश्चित्'** शब्द के विषय में ये सम्भावनाएं टीकाओं के सूक्ष्म-अध्ययन का ही परिणाम है–

(क) क एवं चित् द्वारा जीवेश्वर की एकता का प्रतिपादन किया गया है।

(ख) मंगलवाची के द्वारा काव्य का प्रारम्भ हुआ है।

(ग) खण्डकाव्य होने के कारण कश्चित् से काव्य का प्रारम्भ है।

(घ) अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः के आधार पर कश्चित् से मेघदूत का प्रारम्भ हुआ है।

(ङ) शापग्रस्त होने के कारण नायक का नाम निर्देश नहीं हुआ।

(च) स्वामीद्रोही होने के कारण यक्ष का नाम नहीं लिया गया।

(छ) कश्चित् ही यक्ष का नाम है।

(ज) काव्य के कल्पित होने के कारण कश्चित् कहा गया है।

ठीक उसी प्रकार **'सरसनिचुलात्'** (मेघ १४) के सन्दर्भ में ये धारणाएं व्याख्याओं द्वारा ही बोधगम्य हैं–

(क) इसके द्वारा कवि ने वर्षा ऋतु का बोध कराया है।

(ख) **'वृक्षपल्लवितो अग्रत'** यात्रा में शुभ कहा गया है। मेघ भी यात्री है ऐसे निचुल वृक्ष का मेघ द्वारा दर्शन कार्य सिद्धि का सूचक है।

(ग) यह वृक्ष उपनदियों में उत्पन्न होते हैं। यक्ष को उस जलमय प्रान्त तक ही मेघ का साथ देना चाहिए कहा गया है–

'नदी तीरे गवां गोष्ठे क्षीरवृक्षे जलाश्रये।
आरामेषु च कूपादाविष्टबन्ध्यून् विसर्जयेत्।।'

(घ) निचुल एक कवि का नाम है।

इसी प्रकार **'तरुकिसयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति'** (मेघ. १०३) के सन्दर्भ में ये कल्पनाएं द्रष्टव्य है–

(क) तरुकिसलयों पर देवताओं का निवास होने के कारण उन पर ही देवों के नयन जलबिन्दुओं के पतन का वर्णन है।

(ख) रात्रि के उत्तरार्द्ध में वनभूमि पर पड़ती हुई ओस की बूंदें ऐसी प्रतीत हो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रही हैं मानो वन-प्राणियों को दु:खी देखकर देवता अश्रुमोचन कर रहे हैं ।

(ग) भूमि पर देवताओं का अश्रुपात अमंगलकारी है कहा गया है–

'महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि ।

देशभंगो महादुःखं मरणं च भवेद् ध्रुवम् ।।'

अत: यक्ष की मरणाशंका के निवारण के लिए देवताओं का अश्रुपात पृथ्वी पर न दिखाकर तरुकिसलयों पर दर्शाया गया है । साररूपेण अर्थ की दृष्टि से टीकाओं के अध्ययन द्वारा अनेक नवीन भावों का अवलोकन हुआ है ।

पाठ–भेद की दृष्टि से टीकाएं स्वयं में अनेक विशिष्टताओं को संजोये हुए हैं । टीकाकारों ने अर्थ, लिंग, वचन, कारक व समास आदि को ध्यान में रखते हुए एक स्थल पर ही भिन्न-भिन्न पाठ दिए हैं । उदाहरणार्थ **'प्रत्यासन्ने नभसि'** को देखते हुए जहां कुछ व्याख्याकारों ने **'प्रशमदिवसे'** पाठ अपनाया है वहां **'मासानेतान् गमय चतुरो'** के आधार पर टीकाकार **'प्रथमदिवसे'** पाठ ग्रहण कर प्रथम के प्रवर, आषाढ़ी अमावस्या, आषाढ़ी पूर्णिमा, शुक्ल प्रतिपदा आदि (मेघ. ४) अनेक अर्थ दे जाते हैं । इसी प्रकार **''केतकाधानहेतोः''** पाठ देते हुए टीकाकारों ने लिखा है कि यहां कवि पुष्पों की वर्षा काल में उत्पत्ति दर्शाकर पुष्परूप बाण से यक्ष पर प्रहार कर रहा है । एक तो वर्षाकाल और उस पर सुगन्धयुक्त पुष्पों का दर्शन विरही यक्ष के गण्डस्योपरि पिण्डक: ही है । 'दक्षि०' ने यहां **'कौतुकाधान हेतोः'** पाठ देते हुए लिखा है–**'कौतुकं कामविषयौत्सुक्यम् कौतुकार्पणहेतोरित्यर्थः । कौतुकं विषयाभोगे हस्ते सूत्रे कुतूहले कामे ख्याते मङ्गले च इति यादवः । केतकाधानहेतोरिति पाठे केतकानां गर्भाधानहेतोरित्यर्थः किल भवेत् । इदमत्यन्तश्लाघ्यविशेषणं न स्यादिति बोधव्यम् । कौतुधानहेतोरिति विशेषणं मनोरथस्थितं मेघस्वागतादिकार्यं विस्मृत्य परवशो बभूवेत्यर्थस्यकारण-त्वेनोक्तम् ।'**

वचन की दृष्टि से कुछ टीकाकारों ने अवन्ती को पुरी अथवा देश का वाचक कह अवन्तीम् (मेघ ३०) को एकवचनान्त ग्रहण किया है जबकि अन्य जनपदों का वाचक मान अवन्तीन् बहुवचनान्त रूप में दिया है ।

लिंग को दृष्टिगत कर 'दक्षि०' ने **अलके बालकुन्दानुवेधो'** (मेघ. ६५) पाठ दिया है । कुछेक यहां **'बालकुन्दानुविद्धम्'** अन्य ने **'अलके बालकुन्दानुविद्धम्'** व पूर्ण० ने **'अलका बालकुन्दानुविद्धा'** पाठ अपनाया है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विभक्ति की दृष्टि से कुछ टीकाकार **'गृहानुत्तरेण'** (मेघ. ७२) में उत्तरेण को एनप् प्रत्ययान्त कहकर गृहान् को द्वितीयान्त मानते हैं अन्य टीकाकार उत्तरेण में एनप् प्रत्यय मानते हुए इसे तृतीयान्त कह गृहात् में पंचमी मानते हैं। इस प्रकार टीकाकारों ने अनेक रूपों में पाठ-भेद का दिग्दर्शन कराया है।

कवि ने पूर्वमेघ में अनेक भौगोलिक स्थलों का वर्णन किया है। श्लोक संख्या भी टीकाओं में भिन्न-भिन्न पाईजाती है न्यूनतम ११० व अधिकतम १३० श्लोक दृष्टिगत होते हैं। जबकि मूल रूप में १११ श्लोक निर्धारित किये गये हैं। अत: उन प्रक्षिप्त श्लोकों का भी टीकाओं द्वारा विवेचन किया गया है।

वैसे तो महाकवि के टीकाकारों के अध्ययन की अनेक दृष्टि हो सकती है, परन्तु मेरे द्वारा अध्ययन हेतु केवल दो दृष्टियों का अनुसरण किया गया है–

क–अर्थ–भेद की दृष्टि से टीकाओं का परिशीलन,

ख–पाठ–भेद की दृष्टि से टीकाओं का अवगाहन।

अर्थ–भेददृष्ट्या :

कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः–अधिकांश टीकाकारों ने कृशता के कारण कनकवलय गिर जाने से रिक्त प्रकोष्ठ वाला अर्थ दिया है। 'दक्षि०' के मत में यहां अधिकार निषेध के कारण कनकवलय का गिरना अभिप्रेत नहीं, अपितु विरह की कृशता के कारण कनकवलयभ्रंश कहा गया है। अभि.शा. में भी कवि ने ऐसा ही वर्णन किया है–

इदमशिशिरैरन्तस्यापाद्ववर्णमणीकृतम्।
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धना–
त्कनकवलयं ग्रस्तं ग्रस्तं मया प्रतिसार्यते।। (अभि. शा. ३/११)

'सना०' के मत में कनकवलयभ्रंश के द्वारा कवि ने यक्ष का आभूषण के प्रति अनादर व्यक्त किया है। कहा गया है–

स्मरानलकृशे काये भूषा न बहु मन्यते (सना०)

भरत ने भी सनातन के ही मत का अनुकरण करते हुए कहा है कि यद्यपि वलय के द्वारा ही स्वर्णवलय अर्थ स्पष्ट हो जाता है फिर भी कनक का प्रयोग करिकलभ सदृश ही है।

पूर्ण० के मत में विरही की आभूषण एवं वेश रचना आदि के विषय में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनासक्ति होते हुए भी वाम-प्रकोष्ठ में कनकवलय धारण करना मंगलार्थक है। यह विरहियों का चिह्न प्रतीत होता है। अभि.शा. में भी कहा गया है–

प्रत्याख्यातविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितम्।
बिभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः॥

कृष्ण के मत में इस विशेषण में वियोगी यक्ष की अत्यन्त कृशता को दर्शाते हुए जड़ता रूप अवस्था का बोध कराया गया है। प्रकोष्ठ का वल्लभ ने भुजा, स्थिर ने भुजाग्र, चारि. मल्लि. व भरत ने कूर्पराध, सुमति ने कलाचिका अथवा भुजा का मध्य भाग, कृष्णपति ने करमूल एवं चरणतीर्थ ने मणिबन्ध अर्थ दिया है। प्रकोष्ठ से तात्पर्य भुजा का वह भाग है, जिसमें वलय धारण किया जाता है। यहां विरह की कृशता के कारण उसका गिरना कहा गया है।

पाठ-भेददृष्ट्या :

चातकस्ते सगन्धः (१०) : उक्त पाठ हेतु प्रमुखतः पाठ-भेद प्राप्त होते हैं–

चातकस्तोयगृघ्नुः, चातकस्ते सगर्वः, चातकस्ते सदर्पः, चातकस्ते सगर्धः, चातकस्ते सबन्धुः।

बल्लभ. व कल्याण तथा मल्लि. ने **'चातकस्तोयगृघ्नुः'** पाठ दिया है। स्थिर. ने इस पाठ का खण्डन करते हुये **'तोयगृघ्नुरित्यपरः' पाठ** एवं'। स तादृशस्य शुभस्य सूचकत्वे न घटते (१५)। कवि का अभिप्राय मेघ को मार्ग की अनुकूलता बताना व शुभ शकुन निर्देश करना प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में यह पाठ मान्य नहीं कहा जा सकता।

स्थिर., चारि., सुमति., भरत. व चरणतीर्थ ने **'चातकस्ते सगर्वः'** पाठ दिया है। स्थिर. ने गर्व को हर्ष अर्थ में लिया है–सगर्वः सहर्षः इति शुभचेष्टाकथनम्। सुमति के शब्दों में सगर्वः सहर्ष जललाभात्। चारि. ने गर्व का अभिमान अर्थ दिया है। गर्व से तात्पर्य–

गर्वो नाम कुलैश्वर्य्यरूपविघ्नाबलादिभिः।
इष्टार्थविषयोत्पत्तेर्जायते नीचगोचरः॥ (भरत.)

सारो., लक्ष्मी, महिम रामनाथ व हरगोविन्द ने इसी पाठ को दिया है। सना. ने सदर्पः पाठ देते हुए दर्प का अर्थ हर्ष किया है–**सदर्पो हृष्टः प्राप्ताभीष्टजलकत्वात्।**

गर्व अथवा दर्प का प्रयोग अभिमान के लिए ही होता है और अभिमान के कारण जो ध्वनि होगी, उसमें मधुरता का अभाव होगा। अतः माधुर्य को दृष्टिगत

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर यह पाठ भी मान्य प्रतीत नहीं होता ।

सगर्ध: पाठ यद्यपि उपलब्ध टीकाओं में दृष्टिगत नहीं होता पर भरत ने **'सगर्ध इति क्वचित् पाठः तत्र गृधु अभिकांक्षायां घञ्, गर्धस्तृष्णा तत्सहितः, किन्त्वेवं शाकुन विरोधो दुष्परिहरः'** कह स्वयं ही इस पाठ का खण्डन कर दिया है ।

दक्षि., मल्लि., पूर्ण., व कृष्ण ने चातकस्ते सगन्ध: पाठ दिया है । दक्षि. के शब्दों में सगन्ध: सगन्धो बन्धुरिष्यते इति हलायुध, मल्लि. ने गन्ध को गर्व अर्थ में लिया गया है, साथ-ही सगन्ध: सगर्व: । सम्बन्धीति केचित् । 'गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयो: इत्युभयत्रापि विश्व' कहा है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें सम्बन्धी अर्थ भी मान्य है । मेघ व चातक का अभीष्ट सम्बन्ध कहा गया है–यद्यपि चातकपक्षी, क्षपयति जलधरमकालवेलायाम् । तदपि न कुप्यति जलदो गतिरिह नान्या यतस्तस्य ।

कवि ने अगले ही श्लोक में **'अव्यापन्नां भातृजायाम्'** कहा है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि यहां वायु की अनुकूलता व वाम भाग में चातक की स्थिति कह शुभ शकुन सूचित कर रहा है । चातक का वाम भाग में होना शुभ माना गया है ।

वर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुं संज्ञिता खगाः ।
मृगा वा वामगा दृष्टाः सैन्यसम्पद्बलप्रदाः ।।

कालिदास ने अन्यत्र भी सगन्ध: का सम्बन्धी अर्थ में प्रयोग किया है–सर्व: सगन्धेषु विश्वसिति । अत: सगन्ध: के सम्बन्धी अर्थ को दृष्टिगत करते हुए यही पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । मेघरूप सम्बन्धी को देखकर चातक का मधुर स्वर करना यहां अभिप्रेत है ।

सन्दर्भ–

१. कालिदास ग्रन्थावली प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित ।
२. मल्लिनाथ की सञ्जीवनी टीका ।
३. डॉ० कुमकुमजिंदल द्वारा सम्पादित मेघदूत ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुमारसंभवम् में योग

रजनी सिन्हा*

भारतीय आस्तिक दर्शन से प्रभावित और इष्टदेव के रूप में योगीराज शिव के आराधक महाकवि कालिदास की कृतियों में जीवन के विविध पक्षों का प्रसङ्गानुकूल चित्रण हुआ है। उनकी कृति **'कुमारसंभवम्'** महाकाव्य में शाश्वत आनंद स्वरूप शिव की प्राप्ति में योग की विशिष्ट भूमिका रही है। पार्वती द्वारा तप मार्ग को अपनाना इसका श्रेष्ठ उदाहरण है–

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥[1]

अष्टाङ्गसाधनप्रणाली योग का मुख्य सोपान है और इसपर आरूढ़ होकर सामान्य मनुष्य भी अपनी आत्मा का क्रमिक विकास कर परमात्मस्वरूप हो जाता है। इन यम नियमादि अष्टाङ्गयोग का 'कुमारसंभवम्' में भी उल्लेख हुआ है जिनमें से कुछ की व्याख्या मल्लिनाथजी की दृष्टि से यहाँ ध्यातव्य है। पार्वती की तपस्या के वर्णन क्रम में उपलब्ध अहिंसा रूपी **'यम'** की व्याख्या सञ्जीवनी टीकाकार मल्लिनाथजी ने इस प्रकार की है–'विरोधिभिः' सत्त्वैर्गोव्याघ्रादिभिरुज्झितपूर्वमत्सरं त्यक्तपूर्ववैरं हिंसारहितमित्यर्थः।' 'नियम' में तप का उल्लेख इस प्रकार द्रष्टव्य है– 'ते तव शीलं सद्वृत्तम्। तपस्विनामप्युपदिश्यतेऽनेनेत्युपदेशः प्रवर्तकप्रमाणं तत्तामुपदेशतां गतं प्राप्तम्। मुनयोऽपि त्वां वीक्ष्यं स्ववृत्ते प्रवर्तन्ते इति भावः। **आसन**–'पर्यङ्कबन्धेन वीरासनेन स्थिरपूर्वकायं निश्चलोत्तरार्धमृजुरायतश्चर्ज्वायतस्तं संनमितावुभावंसौ यस्य तं तथोक्तम्'–यहाँ 'पर्यङ्कबन्ध' का अर्थ टीकाकार ने 'वीरासन' किया है। **समाधि** कालिदास ने योग सिद्धि की अवस्था को प्राप्त साधक के लिए **धीरा** विशेषण का प्रयोग किया है[2]।

---

* शोधछात्रा–वैदिक दर्शन विभाग सं०वि०ध०वि० सङ्काय, का०हि०वि०वि०।

१. कु.सं०५-२।

२. विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः कु.सं. १-७३।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसकी व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ कहते हैं–'विकारस्य प्रकृतेरन्यथात्वस्य' हेतौ स्त्रीसंनिधानादिकारणे सति विद्यमानेऽपि येषां चेतांसि न विक्रियन्ते न विकृतिं नीयन्ते त एव धीराः ।'–यहां 'धीराः' पद समाधि की अवस्था में साधक की स्थिति का बोधक है । पार्वती ने अपनी योग साधना से ही 'तथाविधं प्रेम' अर्थात् अलौकिक प्रेम और 'तादृशः पतिश्च' अर्थात् मोक्षप्रद महामृत्युञ्जय शंभु को प्राप्त किया । शंभुपद को मोक्षपद कहते हुए टीकाकार ने लिखा है–'योगिनोऽध्यात्मवेदिनः क्षेत्राभ्यन्तरवर्तिनं शरीरान्तश्चरं सर्वभूतान्तर्यामिणम् । परमात्म-स्वरूपिणमित्यर्थः । मनीषिणो विद्वांसो यस्य शंभोः पदं स्थानमविद्यानमावृत्ते पुनः संसारापत्तेर्भयं यत्र तत्तथा भूतमाहुः ।'

कुमारसंभवम् महाकाव्य में जगत्पिता शिव और जगन्माता पार्वती के अप्रतिम दाम्पत्य का चित्रण कवि ने विशेष उद्देश्य से किया है । उनके द्वारा तारकासुर जैसे महा पराक्रमी किन्तु जगद्द्रोही का विनाश, कुमार की उत्पत्ति उसी प्रकार अभीष्ट है जैसे मुमुक्षुओं को कर्मबन्धों के नाश के लिए धर्म की प्राप्ति अभीष्ट है । इस अभीष्ट सिद्धि में शृंगाररस की अजस्र धाराओं के मध्य योगतत्त्वों का सन्निवेश कवि की अनन्य साधारण प्रतिभा का प्रतिफलन है । मदन-दहन, पार्वती के सौन्दर्य की शिव को बांधने में असफलता, तपस्यारत होना योगी शिव का विघ्नों उपस्थित होने पर भी निर्विकार बने रहना–इत्यादि प्रसंग कुमारसंभवम् में योगतत्त्व का प्रतिपादन करते हैं ।

अस्तु, टीकाकार मल्लिनाथ ने 'कुमारसंभवम्' में प्राप्त योगंतत्त्वों की जो व्याख्या की है वह पातञ्जलयोगसूत्र के प्रथम भाष्यकार महर्षि व्याससम्मत ही प्रतीत होती है । इन्होंने अपनी टीका में अभीष्ट अर्थ की सिद्धि हेतु यत्र-तत्र 'योगवासिष्ठ' एवं 'योगसार' के मतों को भी उद्धृत किया है जिससे योगतत्त्वों को समझना सुकर हो गया है ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मल्लिनाथ सूरि एवं कालिदासत्रयी

[व्याख्या के क्रम में उल्लिखित शास्त्रीय प्रमाणों के विशेष सन्दर्भ में]

डॉ० विवेक पाण्डेय*

कोलाचल मल्लिनाथ सूरि में कोलाचल वंश का नाम है, जिसके परवर्ती वंशजों में एक हैं मल्लिनाथ जी तथा सूरि पद विद्वान् का द्योतक है। क्योंकि ये अपनी कृतियों से जैनधर्मावलम्बी नहीं प्रतीत होते, विशुद्ध रूप से आस्तिक एवं सनातन धर्मावलम्बी। विभिन्न मतभेदों के साथ इनका स्थितिकाल १३५० ई० से १४५० ई० तक निश्चित है। ये स्वयं उद्भट कवि थे। कवि ही कवि को ठीक से समझ सकता है और समझा सकता है। समझाने की प्रक्रिया को बड़ी ही ईमानदारी से मल्लिनाथ जी ने अनुशासित किया। यह अनुशासन उनका अपने लिए था 'नानपेक्षित-मुच्यते'। समझाने की प्रक्रिया में अनपेक्षित वाला अनुशासन बड़ा ही कठिन है। इसका निर्वाह भी मल्लिनाथ ने बखूबी किया है। मल्लिनाथ ने अपनी शैली को भी स्पष्ट किया है–

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन् नानपेक्षितमुच्यते ।।

अन्वयमुखेन व्याख्या या टीका के दो भेद है पहला दण्डान्वय और दूसरा खण्डान्वय। दण्डान्वय ठोस एवं संक्षिप्त होती है तथा खण्डान्वय के द्वारा व्याकरण दृशा पद के स्वरूप के आधार पर अर्थावबोध कराने के कारण विषय को ठीक ढंग से समझा जा सकता है। मल्लिनाथ ने दण्डान्वय पद्धति में ही अधिकांश टीकायें की हैं अर्थात् ठोस एवं संक्षिप्त या नानपेक्षितमुच्यते से अनुशासित।

कालिदास जैसे महाकवि की रचनाओं पर प्रकाण्ड विद्वान ही टीका कर सकते हैं। संजीवनी टीका की भूमिका का एक श्लोक द्रष्टव्य है–

वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासिकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषुचाजागरीत् ।

---

* प्रवक्ता–हड़िया पी.जी. कालेज, हडिया, इलाहाबाद एवं डॉ० मनीषा शुक्ला, प्रोजेक्ट फेलो महिला अध्ययन केन्द्र का.हि.वि.वि. वाराणसी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाचामाकलयद्रहस्यमरिवं यश्चाक्षपादस्फुरां
लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः ।।

लेकिन मल्लिनाथ भी लिखते है कि महाकवि कालिदास की वाचा का रहस्य स्वयं महाकवि या सरस्वती या चतुर्भुज ब्रह्मा ही जान सकते हैं, मुझ जैसा तो कथमपि नहीं–

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती ।
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद्विदुर्नान्ये तु मादृशः ।।

यह कथन **क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः** जैसा ही है। कालिदास ने सूर्यवंश को महत्त्व प्रदान किया तथा मल्लिनाथ ने संस्कृत वाङ्मय के सूर्य सदृश महाकवि कालिदास को। मल्लिनाथ कृत महाकवि कालिदास के काव्यत्रय रघुवंश, कुमारसम्भव तथा मेघदूत की टीकायें प्राप्त हैं। मल्लिनाथ के शब्दों में–

मल्लिनाथकविः सोऽयं मन्दात्मानुजिघृक्षया ।
व्याचष्टे कालिदासीयं काव्यत्रयमनाकुलम् ।।
भारतीय कालिदासस्य दुर्व्याख्याविषमूर्च्छिता ।
एषा सञ्जीवनी टीका तामद्योज्जीवयिष्यति ।।

मल्लिनाथ ने काव्यत्रय के प्रत्येक पद के मर्म एवं सौन्दर्य का प्रकाशन सञ्जीवनी नाम से किया है। टीका का उद्देश्य कदाचित् शिष्यों को आचार्यों के द्वारा दुर्बोध स्थलों को स्पष्ट करना ही था।

कालिदास ने अपनी रचना प्रक्रिया के क्रम में प्रायः समग्र शास्त्र का संस्पर्श किया है और सब पुष्टि सप्रमाण मल्लिनाथ ने अपनी टीका सञ्जीवनी में की है। प्रस्तुत निबन्ध में मल्लिनाथ के द्वारा व्याख्या के क्रम में उल्लिखित शास्त्रीय-प्रमाणों के सन्दर्भों के आयाम को स्पष्ट करने का या संकलित करने का कार्य किया गया है।

मल्लिनाथ ने अनेक स्थलों पर वेदों से प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। महाराज दिलीप गो सेवा में लगे हैं, साथ में सुदक्षिणा है। सुदक्षिणा के लिए कालिदास ने

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'जाया' पद का प्रयोग किया है। 'जाया' का स्पष्टीकरण करते हुए श्रुति से प्रमाण देते हैं–तथा हि श्रुतिः–पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरम्। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते। तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः इति। इत्यादि।

मल्लिनाथ व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने प्रायः प्रत्येक श्लोक में व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ दी हैं। ये व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ पाणिनि की अष्टाध्यायी सूत्रानुसारी हैं। इस क्रम में मल्लिनाथ ने विभिन्न स्थलों पर शाकटायन, यास्क, वार्तिककार, महाभाष्यकार तथा काशिका आदि का उल्लेख किया है।

इन्होंने अपनी टीका में अनेक स्थलों पर ज्योतिषग्रन्थों से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। **'पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमा'** रघु० ३/२२ के स्पष्टीकरण हेतु प्रमाण देते हैं–अत्र वराहसंहितावचनम्–

सलिलमये शशिनि खेर्देधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्।
क्षपयन्ति दर्पणादेरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः ।। इति

मल्लिनाथ ने आश्वलायन, आपस्तम्ब, पारस्कर इत्यादि गृह्यसूत्रों से भी प्रमाण दिये हैं। प्राजापत्य विवाह के विषय में वे लिखते हैं यथाहाश्वलायनः 'सह धर्म चरत इति प्राजापत्यः इति। पितर सोम अथवा चन्द्रमा की विशिष्ट कला का पान करते हैं 'अत्र पराशरः'–

पिबन्ति विमलं सोमं विशिष्टा तस्य या कला।
सुधामृतमयी पुण्यां तामिन्दोः पितरो मुनेः ।। इति

मल्लिनाथ ने दर्शनशास्त्र के अनेक तथ्यों का यत्र-तत्र उल्लेख किया है। मनः हृदि व्यवस्थाप्य (कुमार सम्भवम् ३/५०) की व्याख्या करते हुए उद्धरण दिया है तथा च वसिष्ठः–

यतो निर्याति विषयान्यस्मिंश्चैव प्रलीयते।
हृदयं तद्विजानीया मनसः स्थितिकारणम् ।।

मल्लिनाथ ने विविध धर्मसूत्रों का भी उल्लेख किया है। रघु ने योगसमाधि द्वारा प्राण छोड़ा। अज ने उनकी अन्त्येष्टि अनग्नि विधि से की–इत्यत्र शौनकः–

सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्य च।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न तस्य दहनं कार्यं नैव पिण्डोदकक्रिया ।।

निदध्यात्प्रणवेनैव विले भिक्षोः कलेवरम् ।

प्रोक्षणं खननं चैव सर्वं तेनैव कारयेत् ।। इत्यादि अनेक प्रमाण धर्मशास्त्र से दिये हैं ।

मल्लिनाथ ने विभिन्न प्रसंगों पर पुराण साहित्य से अनेक उद्धरण दिये हैं । अगस्त्याचरितामाशाम् की व्याख्या में मल्लिनाथ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं–

अगस्त्यो दक्षिणामाशामाश्रित्य नभसि स्थितः ।

वरुणस्यात्मजो योगी विन्ध्यवातापिमर्दनः ।। इति ब्रह्मपुराणे

मल्लिनाथ की व्याख्या में अनेक कोशपाठों का उल्लेख है यथा अक्षय्यकोश, अमरकोश, विजयप्रकाश कोश, वैजयन्तीकोश, हलायुध कोश, शाश्वतकोश, शब्दार्णवकोश, केशव, सज्जन, उत्पलमाला, भूपाल, मालतीमाला, शब्दानुशासन क्षीरस्वामी, नानार्थकोश इत्यादि ।

मल्लिनाथ ने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों से साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं—अलंकार सर्वस्व,एकावली, काव्यादर्श, काव्यप्रकाश, भोजराज, वामन, सारस्वतालंकार, इत्यादि । यथा रघुवंश की टीका की अवतारणा करते हुए काव्यप्रकाश के प्रथम उल्लास की द्वितीय कारिका उद्धृत की है–'इह खलु सकलकविशिरोमणिः कालिदासः ''काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।'' इत्याद्यालंकारिकवचनप्रामाण्यात् काव्यस्यानेकश्रेयः साधनतां पश्यन् रघुवंशाख्यं महाकाव्यं चिकीर्षुः ।'

मल्लिनाथ राजसभा में रहने के कारण राजनीति से सुपरिचित थे तथा लोकज्ञ विद्वान् होने से नीतिशास्त्र के मर्मज्ञ भी थे । 'स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशिता (रघु० ८/२१) की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ लिखते हैं—अत्र कौटिल्यः- भूतपूर्व-मभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशप्रवाहेण स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् । विश्वजित याग के बाद रघु धन से प्रत्यक्ष रूप से अकिञ्चन हो गये हैं । गुरुदक्षिणा हेतु गया हुआ कौत्स उनके इस अकिञ्चनत्व की प्रशंसा करता है । इस प्रसङ्ग में मल्लिनाथ भर्तृहरि का वचन उद्धृत करते हैं–

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहितो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः ।।

इस क्रम में मल्लिनाथ ने कामन्दक, भोजराज, रत्नाकर, मिताक्षरा, इत्यादि का प्रमाण दिया है । मल्लिनाथ ने सञ्जीवनी टीका में कामशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों से भी अनेक प्रमाण दिये हैं । 'मित्रकृत्यमपादिश्य पार्श्वतः' की व्याख्या करते हुए प्रमाण प्रस्तुत करते हैं विरक्तलक्षणप्रस्तावे वात्स्यायनः मित्रकृत्यं चापदिश्यान्यत्र शेते इति । उत्तरमेघ के 'प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित् की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ लिखते हैं–शक्तयोरेकवारसुरतस्य यामावधिकत्वात्स्वप्रेऽपि तथा भवितव्यमित्यभिप्रायः । तथा च रति सर्वस्वे–

एकवारावधिर्मायो रतस्य परमो मतः ।
चण्डशक्तिमतो यूनोरद्भुतक्रमवर्तिनोः ।।

इसी प्रकार मल्लिनाथ ने रतिहस्य, रसरत्नाकर, रससुधाकर, रसाकर, गुण पताका, गोनर्द, हारीत, भूपात प्रभृति से भी विभिन्न स्थानों पर प्रमाण प्रस्तुत किये हैं ।

ऐसा प्रतीत होता है कि मल्लिनाथ आयुर्वेद से भी सुपरिचित थे । उन्होंने आयुर्वेद के अनेक ग्रंथों के उद्धरण दिये हैं यथा अशोककल्प, वाग्भटकृत अष्टाङ्ग हृदय, मदिरार्णव, भट्टमल्ल इत्यादि ।

इन सब के अतिरिक्त मल्लिनाथ ने अपनी संजीवनी टीका में पशुविज्ञान, गणित, खगोल, भूगोल, रत्नशास्त्र, जीवविज्ञान इत्यादि के प्रयोग प्रमाण हेतु प्रस्तुत किये हैं । इस प्रकार निश्चय ही कहा जा सकता है कि मल्लिनाथ के पाण्डित्य से कोई भी क्षेत्र असंस्पृष्ट नहीं था । उन्होंने अपनी समग्रता से युक्त पाण्डित्य से कविशिरोमणि कालिदास की उत्कृष्ट रसपेशल काव्यकृतियों को सुगम एवं हृदयङ्गम बनाया ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काटयवेम की दृष्टि में 'मालवाग्निमित्रम्'

संध्या कुमारी*

संस्कृत काव्य-जगत् में महाकवि कालिदास अप्रतिम प्रतिभावान् कवि हैं सामान्यतया नाटककार फलोन्मुखी रहता हुआ ही इतिवृत्त का संयोजन करता है, किन्तु टीकाकार की दृष्टि प्रमुखतया उस अर्थतत्व, रसतत्व की ओर रहती है जिसकी अभिलाषा सभी सहृदय करते हैं ।

महाकवि कालिदास की मालविकाग्निमित्रम् की बहुत सी टीकाएँ सौभाग्यवशात् आज भी उपलब्ध है, उन उपलब्ध टीकाओं में प्राचीनतम टीका काटयवेम की कुमारगिरिंराजीया है ।

काटयवेम दक्षिण के कोण्डवीडु के रेड्डी राजा कुमारगिरि के मन्त्री थे । इनका समय १४०० ई० के लगभग माना जाता है । कुमारगिरि के अनुरोध पर इन्होंने कालिदास की रचनाओं पर कुमारगिरिराजीया नामक टीकाएं लिखीं ।

कथास्रोत की दृष्टि से काटयवेम प्रकृत नाटक पर व्यापक दृष्टि से विचार करते हैं और उनके एक वाक्य से भी नाटक के अनेक पक्ष प्रकाशित होते जान पड़ते हैं । प्रकृत नाटक का इतिवृत्त प्रख्यात है अथवा उत्पाद्य या मिश्र । इस विषय पर काटयवेम ने स्पष्टतया तो कुछ नहीं लिखा किन्तु नान्दी पद्य के **ईश** पद के निर्वचन में उन्हें किसी लोकोत्तर राजा का संकेत मिलता है । जिसे वे लिखते भी है–

ईश इत्यनेन च लोकोत्तरः कश्चिद्राजाऽस्मिन्नाटके वर्ण्यत इति सूच्यते ।

इसी क्रम में "मार्गो नाम नाट्यविशेषः" यह कहकर मार्ग शब्द से प्रकृत नाटक की शास्त्रीयता को प्रमाणित करते हैं क्योंकि 'मार्ग' नामक नाट्यभेद तो नाट्यवेदोपवृंहित है ।

मालविकाग्निमित्रम् की प्रणयकथा की पूर्णता निश्चितरूप से अधिकारिक वृत्त के साथ प्रासङ्गिक के आनुषङ्गिक होने पर ही है ।

* शोध छात्रा–संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, का.हि.वि.वि. ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस टीका की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें अर्थप्रकृति अवस्था, सन्धि सन्ध्यङ्ग तथा अर्थोपक्षेपक आदि नाट्यतत्वों का यथास्थान निर्देशपूर्वक विवेचन है।

प्रथम अङ्क का प्रारम्भ मिश्रविष्कम्भक से होता है। कुमारगिरिराजीया में काटयवेम लिखते हैं–

"कविरिदानीमङ्कमारभमाणः कथोपयोगितया प्रथमं मिश्रविष्कम्भकम्

प्रथम अङ्क में प्रयुक्त अंकावतार अर्थोपक्षेपक के औचित्य को भी काटयवेम स्वीकार करते हैं।

इतिवृत्त का बीज भी काटयवेम प्रथम अङ्क के विष्कम्भक में ही दिखाते हैं– "अपुव्वा इअं दरिआ" आदि कहकर बीज का निर्देश करते हैं।

काटयवेम प्रकृत नाटक के प्रथम और चतुर्थ अङ्क में दो स्थानों पर स्वतन्त्रतया बिन्दु का निर्देश करते हैं।

टीकाकार उपक्षेप नामक मुखसन्धि का न्यास प्रथम अङ्क में मानते हुए कहते हैं–

"अत्र गम्यमानस्य मालविकासरूपस्य बीजस्य विन्यासादुपक्षेपो नाम सन्ध्यङ्गमुक्तं भवति"।

प्रतिमुख सन्धि के १३ अङ्गों में से मात्र दो का प्रयोग ही प्रकृत नाटक में है। द्वितीय अङ्क के नर्म को काटयवेम कहते हैं–

"अत्र परिहासस्य गम्यमानत्वान्नर्मेति सन्ध्यङ्गमुक्तं भवति।"

इस प्रकार काटयवेम ने समुचित रूप से सन्ध्यङ्गों की चर्चा की है तथा प्रकृत नाटक में लगभग २१ सन्ध्यङ्गों को माना है। टीकाकार मालविकाग्निमित्रम् के इतिवृत्त के स्वरूप के लिए नाटककार से सहमत प्रतीत होते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मालविकाग्निमित्रम् नाट्याचार्यों के और नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुकूल रचा जाने वाला नाटक है।

काटयवेम वस्तु का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करते हुए नाटककार के वस्तुनैपुण्य का प्रकाशन करते हैं।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास के काव्यों में संस्कार विमर्श

डा० आभा श्रीवास्तव*

शिवं की वीणा पर सुन्दरं के गीत गाने वाले प्रेम और सौन्दर्य के अमर गायक कविकुलगुरु कालिदास भारतीय संस्कृति के पुरोधा थे। इनकी वाणी में भारतीय संस्कृति पूर्णरूपेण अनुगुंजित हुई। संस्कार सम्पन्न व्यक्ति में ही शुचिता, पवित्रता, सदाशयता, उदात्तता तथा सात्त्विक गुणों की सहज प्रतिष्ठा होती है। इससे मानव जीवन अत्यन्त मर्यादित, संयमित एवं आचारनिष्ठ बनता है। सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय लगाने पर 'संस्कार' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है पूराकरना, सुधारना, सज्जित करना, माँजकर चमकाना, शृंगार, सजावट इत्यादि। संसार की प्रत्येक वस्तु स्वयं को दिव्य भव्य तथा आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने के लिए संस्कार की अपेक्षा रखती है। संक्षेप में कहा जा सकता है **''गुणान्तराधानं संस्कारः''**। महर्षि जैमिनि के अनुसार–**''संस्कारो नाम स भवति यस्मिञ्ज्ञाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य''**। वस्तुतः संस्कार, वैज्ञानिक अवधारणा के रूप में विकसित भारतीय जीवन पद्धति की सर्वाधिक स्पृहणीय सर्वस्वीकृत एक महत्त्वपूर्ण आनुष्ठानिक प्रक्रिया है। संस्कार पात्रता पैदा करते हैं। भारतीय मनीषियों ने मनुष्य जीवन को अधिकाधिक क्षमता सम्पन्न, संवेदनशील, भावप्रवण एवं उपयोगी बनाने के लिये ही संस्कारों की अनिवार्यता स्वीकार की है।

महाकवि कालिदास ने जीवन में संस्कारों की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए अपने महाकाव्य रघुवंश में लिखा है कि पुरोहित वशिष्ठ जी ने जब रघु के जातकर्म आदि संस्कारों का सम्पादन कर दिया तब वह बालक ऐसे सुशोभित होने लगा जैसे खान से निकल कर खरीदा गया हीरा–

स जातकर्मण्यखिले तपस्विना,
तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः,
प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ।। रघु. ३/१८

आचार्य मल्लिनाथ ने अपनी संजीवनी टीका में लिखा है **''अखिले समग्रे**

---

* अध्यक्षा–काशीतत्त्वसभा, थियासॉफिकल सोसायटी, वाराणसी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जातकर्मणि कर्त्तव्यसंस्कारविशेषे कृते सति । अधिकं बभौ वशिष्ठमन्त्र-प्रभावात्तेजिष्ठोऽभूदित्यर्थः ।" अतः कहा जा सकता है कि संस्कार उस नींव का नाम है जिस पर व्यक्तित्व का भव्य प्रासाद खड़ा होता है । यह मानव जीवन को परिष्कृत करने वाली आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक योजना है । नर को नारायण बनाना पुरुष को पुरुषोत्तम बनाना वैदिक संस्कृति का मौलिक संदेश है । जिस प्रकार षोडश कलाओं से सम्पन्न होकर चन्द्रमा पूर्ण होता है, तथैव मानव जीवन षोडश संस्कारों से समृद्ध होता है, परिपूर्ण होता है । ये संस्कार हैं–

१. गर्भाधान २. पुंसवन ३. सीमन्तोन्नयन ४. जातकर्म ५. नामकरण ६. निष्क्रमण ७. अन्नप्राशन ८. चूड़ाकरण ९. कर्णवेध १०. उपनयन ११. वेदारम्भ १२. समावर्तन १३. विवाह १४. वानप्रस्थ १५. संन्यास १६. अन्त्येष्टि ।

इसमें से प्रथम तीन प्रसव पूर्व के संस्कार हैं जो माता पिता द्वारा किये जाते हैं, जात कर्म से कर्णवेध तक के ६ संस्कार बाल्यावस्था के हैं, जो परिजन परिवार जन के सहयोग से सम्पन्न होते हैं । अग्रिम तीन-उपनयन, वेदारम्भ एवं समावर्तन विद्याध्ययन से सम्बद्ध हैं जो मुख्यतः आचार्य के निर्देशानुसार सम्पन्न होते हैं । विवाह, वानप्रस्थ एवं संन्यास ये तीन संस्कार तीन आश्रमों के प्रवेश द्वार हैं तथा व्यक्ति स्वयं इनका निष्पादन करता है और अन्त्येष्टि जीवन यात्रा का अन्तिम संस्कार है जिसे पुत्र-पौत्रादि पारिवारिक जन एवं इष्टमित्रों के सहयोग से किया जाता है ।

रघुवंश महाकाव्य में कालिदास कहते हैं कि रघुवंशी आजन्म शुद्ध अर्थात् गर्भाधानादि समस्त संस्कारों के सम्पादन के कारण पवित्र होते थे । राजा दिलीप गर्भवती रानी सुदक्षिणा को निधिगर्भा पृथिवी, अग्निगर्भा शमीवृक्ष तथा अन्तः सलिला सरस्वती नदी की भाँति पुत्ररत्नगर्भा समझते थे ।[2] राजा दिलीप ने पत्नी के प्रति प्रेम और मन की उदारता के अनुसार, अपने बाहुबल से उपार्जित दिगन्तर विख्यात ऐश्वर्य के अनुसार तथा भावी पुत्र के उत्पन्न होने के संतोष के अनुसार, पुंसवनादि संस्कारों को क्रमशः किया ।[3] मल्लिनाथ इस श्लोक पर टीका करते हुए लिखते हैं– **"आदिशब्देनानवलोमनसीमन्तोन्नयने गृह्येते । अत्र मासि द्वितीये तृतीये वा पुंसवनं यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् इति पारस्करः । चतुर्थेऽनवलोमनम् इत्याश्वलायनः । षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तोन्नयनम् इति**

१. मनुस्मृति २/२६
२. रघुवंश ३/९
३. रघुवंश ३/१०

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

याज्ञवल्क्यः । पुत्र हीन होने के कारण दिलीप पितृ-ऋण के बन्धन में थे किन्तु रघु का जन्म होने से वे इस बन्धन से मुक्त हो गये, इस प्रसंग का कवि कालिदास ने अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है ।[४] जातकर्म के उपरान्त नामधेय संस्कार के विषय में वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि शब्दों के अर्थों को जानने वाले दिलीप ने रघि (लघि) धातु का जाना अर्थ समझ कर अपने पुत्र का नाम रघु इसलिये रखा कि वह सम्पूर्ण शास्त्रों के पार पहुंच जायेगा ।[५] कालिदास कहते हैं कि चूड़ाकरण संस्कार होने के पश्चात् चञ्चल काकपक्ष वाले रघु ने वर्णमाला के ग्रहण अर्थात् विद्यारम्भ संस्कार के द्वारा शब्दशास्त्र में उसी प्रकार प्रवेश किया जैसे जीव जन्तु, नदियों के द्वारा सागर में प्रवेश करते हैं ।[६] रघु को विद्याएं प्रदान करने में गुरुओं का परिश्रम पूर्णतः सफल हुआ, क्योंकि सत्पात्र को दी गयी शिक्षा अवश्य सफल होती है–**क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति** ।[७] विवाह संस्कार के विषय में महाकवि की मान्यता है कि एक दूसरे के सर्वथा अनुरूप वर वधू का[८] गुरुजनों की सम्मति से[९] उचित आयु में[१०] विवाह होना चाहिये । अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अंक में शकुन्तला एवं प्रियंवदा के सम्वाद से कवि ने अपना अभिमत स्पष्ट कर दिया है । रघुवंश में भी कवि कहते हैं कि रघु ने जब बचपन को बिताकर युवावस्था को प्राप्त किया, तब उनका शरीर और भी खिल उठा । महाराजा दिलीप ने सर्वथा उचित आयु में रघु का केशान्त संस्कार करने के उपरान्त विवाह संस्कार किया ।[११]

रघुवंश महाकाव्य में रघुवंशी राजाओं के उदात्त चरित्र को आदर्श के रूप में स्थापित करते हुए कवि कहते हैं कि क्षीरसागर से उदित चन्द्रमा की भाँति आजन्म शुद्ध रघुवंशी शैशव काल के समस्त विद्याओं का अभ्यास करने वाले, युवावस्था में (सन्तानप्राप्ति के लिये) दारपरिग्रह करने वाले तथा जीवन की सन्ध्यावेला में योग (समाधि) द्वारा शरीर को छोड़ने वाले थे ।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।। रघु १/८

---

४. रघुवंश ३/२०
५. रघुवंश ३/२१
६. रघुवंश ३/२८
७. रघुवंश ३/२९
८. अभिज्ञान प्र. अंक
९. अभिज्ञान प्र. अंक
१०. अभिज्ञान प्र. अंक
११. रघुवंश ३/३३

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्त्येष्टि संस्कार की दो विधियां रघुवंश में निरूपित हैं– १. भूमि में समाधि देना, तथा २. अग्निदाह करना।

जब राजा रघु योग बल से परमतत्त्व में विलीन हो गये तब उनके पुत्र अज ने पिता के शरीर का दाह संस्कार नहीं किया, वरन् भूमि में समाधि दे दी।[१२] मल्लिनाथ ने टीका में स्पष्ट किया है कि संन्यासियों का दाह संस्कार नहीं किया जाता। किन्तु रघुवंश में ही राजा अग्निवर्ण अत्यंत विलास के कारण यक्ष्मा रोग से पीड़ित हो गये थे, जब उनका अवसान हुआ तब शव को राजभवन के उपवन में ही अग्नि को समर्पित कर दिया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास के काव्यों में समस्त संस्कारों का वर्णन अत्यन्त विधि विधान के साथ किया गया है। महर्षि अरविन्द का कहना है कि वाल्मीकि व्यास तथा कालिदास प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की अन्तरात्मा के प्रतिनिधि हैं और सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद भी इनकी कृतियों में हमारी संस्कृति के प्राणतत्त्व सुरक्षित रहेंगे।

भारतीय संस्कृति ने जिन मूल्यों को अपनी दीर्घकालीन साधना तथा अनुभव के आलोक में प्रतिष्ठित किया उसकी नितान्त मंजुल एवं प्रभविष्णु व्यंजना कवि कुल गुरु के काव्य में सम्पन्न हुई है। तपोवन की क्रोड में पली हुई सभ्यता ही मानव का सच्चा मंगल कर सकने में समर्थ है। मानवता की इस सुदीर्घ विकास यात्रा ने मनुष्य और प्रकृति के बीच जो चौड़ी खाई उत्पन्न कर दी है उसके पाटे जाने की आवश्यकता तथा स्पृहणीयता की ओर कालिदास ने हमारी मनोदृष्टि आकर्षित की है। यही कारण है कि सौन्दर्य सागर के सम्पूर्ण आवर्त विवर्तों में पाठकों को आकण्ठ निमज्जित करा कर कालिदास उसे शिवं के पुनीत आदर्श लोक की ओर मोड़ देते हैं, और अन्ततः लौकिक श्रेयस् के ऊपर पारलौकिक श्रेयस् का अमर संदेश सुना जाते हैं।

अप संस्कृति के इस युग में हमें यह याद रखना है कि मानव जीवन संस्कारों से ही समृद्ध होता है। पुरुषार्थ चतुष्टय की उपलब्धि, शाश्वत शान्ति और समृद्धि के लिये संस्कारों से सुसंस्कारित होना अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य भी है। इस दृष्टि से कालिदास के काव्यों में व्यक्त संस्कार तत्त्व का अनुशीलन अत्यन्त समसामयिक एवं समीचीन है।

●

१२. रघुवंश ८/२५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदासस्य सर्वस्वम्

मनीषा तिवारी*

कविकुलभूषण महाकवि कालिदास के काव्यों में प्रकृति की नानारूपिणी छवियों के नितांत मनोरम चित्र उपलब्ध होते हैं। कवि की कृतियों में शृंगार की कमनीयता तथा उद्देश्य की शालीनता का जो मणिकाञ्चन संयोग प्रतिफलित हुआ है, उसमें प्रकृति नटी के अभिराम नृत्यों का सन्निवेश कम आकर्षक नहीं। कवि की रचनाओं को देखकर यह आभास होता है कि विविध रूपा प्रकृति ने उसके भावुक हृदय को ऐसा मुग्ध किया कि उसका प्रकृति प्रेम काव्यमयी भाषा में प्रस्फुटित हो उठा। यहाँ तक कि उसे अपने उपास्य देव शंकर के दर्शन भी प्रकृति के विविध रूपों में होने लगे। जिसका चित्रण उसने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक के प्रारम्भ में ही **'या सृष्टि : सुष्टुराद्या'**–इत्यादि श्लोक में किया है। वास्तव में कवि के प्रकृति प्रेम का जो कोमल अङ्कुर 'ऋतुसंहार' में अङ्कुरित हुआ वह 'मेघदूत' 'कुमारसम्भवम्', व रघुवंश में पल्लवित तथा पुष्पित होकर 'शाकुन्तलम्' में चरम परिणति को प्राप्त हुआ है। यही कारण है,कि 'शाकुन्तलम् में मानव एवं प्रकृति का जैसा उदात्त तादात्म्य हमारे समक्ष आता है·वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। चतुर्थ अङ्क में पहुँचते-पहुँचते कवि ने निर्जीव प्रकृति को सजीव बना दिया। यहाँ प्रकृति स्वयं एक पात्र बनकर कथानक का अङ्ग बन गई है। अङ्क के आरम्भ में ही जीवन की यथार्थ अवस्थाओं सुख-दुःख सम्पत्ति-विपत्ति के क्रम का चित्रण भी कवि ने चन्द्रास्त और सूर्योदय के माध्यम से किया है। एक ओर चन्द्रमा का अस्त होना और दूसरी ओर भगवान् भास्कर का आगमन मानो जगत् की किसी अवस्था विशेष में ईश्वर के नियम को बतला रहे हैं–

यात्येकतोऽस्तशिखरं परितोषधीनाम्
आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ।। अभि.शा.४/२ ।

प्रकृति का मानवीकरण करके कवि ने प्रकृति के नाना रूपों लता, वृक्षों तथा पत्तियों के साथ शकुन्तला के जीवन की एकरूपता दिखाई है। पतिगृह को जाते

---

* शोध छात्रा, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, का.हि.वि.वि.।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय वस्त्राभूषणों को देकर शकुन्तला को अलङ्कृत करने का कार्य प्रकृति ही करती है—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवता करतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ।।४/५

महर्षि कण्व ने तपोवन के वृक्षों से उनके प्रति शकुन्तला के स्नेह का स्मरण कराते हुए अनुरोध किया है कि वे उसे पति गृह जाने की अनुमति प्रदान करें-

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।।४/९।

आश्रम को छोड़कर जाते हुए न केवल शकुन्तला के ही पैर आगे नहीं पड़ रहे हैं अपितु उसके वियोग की आशंका से समस्त चराचर प्रकृति विरहाकुल हो उठी है–

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।
अपसृतपाण्डुपुत्रा मुञ्चन्त्यश्रुणीव लताः ।।४/१२।।

मृग के छौने का शकुन्तला के प्रति मातृ स्नेह व शकुन्तला का उसके प्रति अनुराग का चित्रण कवि ने कितनी स्वाभाविकता से किया है–

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्र कृतकः पदवीं मृगस्ते ।।४/१४।।

उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त भी वनज्योत्स्ना, माधवीलता आदि का सजीव चित्रण सहृदय हृदय को अनायास ही आकृष्ट करते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कालिदास की दृष्टि प्रकृति के सौम्य रूप, माधुर्यमय प्रवृत्ति और स्निग्ध सौन्दर्य के ऊपर रीझी है। वह प्राकृतिक सौन्दर्य 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। इसलिए उसको कालिदास की काव्य सरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसाद कहा गया है—

कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः यत्र याति शकुन्तला ।।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

I name thee, O Śakuntalā ! and all at once is said.

-Leena Keshwani*

Kālidāsa is a genius among Sanskrit dramatists. His work Abhijñana Śākuntalam does not require any introduction. Its fame has crossed the boundaries to earn appreciation and acclaim.

Goethe, the master poet of Europe expressed his admiration of Kālidāsa's Śākuntalam in 1792 in four well-known lines, as translated by E.B. Eastwick-

"Wouldst thou the young year's blossom and the fruits of its decline.
And all by which the soul is charmed, enraptured, feasted, fed,
Wouldst thou the earth, and heaven itself in one sole name combine ?
I name thee, O Śakuntalā ! and all at once is said."[1]

The Sanskrit translation of Goethe's uttarance follows :

"वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत् ।
यच्चान्यन्मनसो रसायन मतः सन्तर्पणं मोहनम् ।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलाकयो ।
रैश्वर्यं यदि वाच्छसि प्रिय सखे ! शाकुन्तलं सेव्यताम् ।"

Appreciating the great German poet Goethe's brief but pregnant criticism of Kālidāsa's Śakuntalā, Rabiṇdranath Tagore, aptly remarks, "Goethe says expressly that the

---

* Research Scholar Sanskrit Department Faculty of Arts, B.H.U.

1. Abhijñaya Śākuntalam of Kālidās
A.B. Gajendragadkar, Preface
N.K. Gandhi, The popular book store, Tower Road, Surat Seventh Edition.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Śakuntalā contains the history of a development- the development of flower into fruit, of earth into heaven, of matter into spirit.''[1]

Goethe, how beautifully personifies Śakuntalā, when he says that she wholely and solely embodies the concept of earth and heaven. One word Śakuntalā uttered and all the hallowed feelings are expressed in its totality. The beauty not only is a relishing feast to the eyes but also enthralls the soul and all beings.

Abhijñana-Śākuntalam heralds the triumpth of pure love over tumultuous passions, of the subtle over the gross. It brings into focus the human potential for a divine stature by elevating man to a partnership with Gods in the achievement of a victory against evil. In short, it conveys the great lesson that Gods and men should combine to confer benefits on all the worlds. The story of Duṣyanta and Śakuntalā is woven with the colourful vibgyor of passions which, in truth dessolves into the pure white brightness of spiritual love.[1]

Abhijñana-Śākuntalam is a means to rise above the material plane and touch divinity. As long as love springs from superficial attraction and passion, it is short-lived and not praiseworthy. However, when it is purified through patience, faith and penance then it reveals its true nature. Such love is long-lasting and admired by all.

The love of Śakuntalā and Duṣyanta passes through both these levels. The feeling of Duṣyanta towards Śakuntalā is like a garland made of flowers of attraction and passion. It

1. Kālidāsa Śakuntalā-A study
B.K. Shivaranalah, P.N. 44
Ramya Publishers Saraswathipuram, Mysore 1933.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

is earthly love. It is a garland that only pains the neck with it's weight. And it is due to this reason that this love is not long-lasting. But when this love-garland is decorated with the flowers of sacrifice, penance, patience, faith and hope, it touches divinity. And this garland only enhances the beauty of the wearer.

Thus the love of Śakuntalā and Duṣyanta begins on an earthly, material note, but upon passing through the fire of separation, it attains it's zenith and touches divinity.

In the 'Śakuntala', Goethe says, 'The poet appears in his highest function. As a representative of the most natural phenomena, the finest mode of life, the purest moral striving, the most worthy majesty and of the most earnest god-worship he ventures upon the common and silly contrasts, and in another place; 'Before all the 'Śakuntalā' is mentioned by us, in whose admiration we became absorbed for a year. The feminine purity, the faultless complacence, the forgetfulness of a man, the motherly loneliness, one the union of the father and the mother through the son, the most natural phenomena have been poetically elevated to the regions of the wonder, which hover like the fruitful clouds between the heaven and the earth and a completely natural spectacle is introduced through gods and the god-children.'[1]

Each incident is beautifully presented and we are taken aback to experience a sense of joy even with moist eyes. Laughter and beauty fills the heart with joy, in the same breath, we experience joy even in the tears that embalm the

1. Ibid. P.N. 44

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

eyes......This in the myth that comes into being when a master like Kālidāsa, speaks about the apparently simple facets of feelings.

Mr. Herder says-'A number of sublime but at the same time tender conceptions occur here, which one would try to find in vain in Greek poems, because the Indian world and the human mind itself has instilled them into the region, the nation and the poet'[1].

The drama is basically trying to explain the exceptional union of two hearts and souls but at the same time it is beholding the morality and culture's essence. Meaning of morality is here quite different than it's general interpretation. Here morality is reflecting the respect for relations, care for loved ones, knowing the art of discriminating right or wrong, on the basis of the culture and heritage one is carrying with. The drama has also incorporated the various shades of moral striving for owning their. self respect through divinity, devotion and determination. It has not only conveyed the sacred emotions of woman but also described the purity of her soul.

In the present scenario, the morality, divinity and cultural dignity are not profound, so the young generation must try to inherit the values and cultue and at the same time should try to convert them into reality through their own acts.

●

---

1. Śakuntalā
   Rabindra Nath Tagore, Preface
   Machmillan and Co. Limited. St. Martin's Street, London, 1920.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Kalidasa : In Western Eyes

-Smita Dwivedi*

Kalidasa is one of the greatest poets of India. He is supposed to be the Vasant Doot in the orcheard of Sanskrit Sahitya. He gave a tone and tongue to thoughts suitable to the ages. A large number of works have been attributed to the poet like. Ritusamhara, Meghdut, Kumarsambhav, Raghuvamsa, Malvikagnimitra, Vikramorvasiyam and Abhijnana-Sakuntalam.

Two hundred years ago at the time when the English people first stepped into the land of India, it was considered a dormant country and poor in knowledge, but Kalidasa's Abhijnana-Sakuntalam did a great job to invoke a sense of honour and dignity in the Indian mindset.

155 years ago in the year 1789 Sir William Jones translated Abhijnana Sakuntalam in English and after reading this translation, the great German Poet, Goethe expressed his overwhelming thoughts about Shakuntalam.

The importane of a literary composition depends on its popularity among scholars and the masses alike and Abijnana Shakuntalam has this rare quality of being appreciated by the scholars as well as the common people.

It is as inspiring as Ramayana and Mahabharata and sets the tradition for new writings.

Speaking of Kalidasa's Sakuntalam, Sir Monier Williams remarks. 'No composition of Kalidasa displays more richness and fertility of his poetic genius and the exuberance of his fancy, his profound knowledge of the human heart, his famil-

* Research Scholar-B.H.U.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

iarity with the working of heart and its conflicting feelings : in short many entitledu him to the rank of the Shakespeare of India."

Alexander Von Humboldt, with reference to Indian poetry observes. "The name of Kalidasa has been frequently and early celebrated among the western nations. The English and German translation of the Sakuntala have excited the feeling of admiration, which has been so amply bestowed upon Kalidasa."

Augustus Willian Von Schlegel, in his first lecture on dramatic, literature says "Among the Indians, the people from whom perhaps all the cultivation of the human race has been derived, plays were common long before they could have experienced any foreign influence."

American scholar named Ryder, establishing supremacy of Kalidasa, concluded-

"We know that Kalidasa was a great poet, because the world has not been able to leave him alone".

"Of his drama Shakuntala" Prof. Ward has said-"It is a dramatic idyll of can surpassing beauty and in the opinion of the highest authorities, one of the masterpieces of the poetic literature of the world".

It is not possible to quote here the appreciation of Kalidas by Professor Lessen and Dr. Sylva in Levi, we only content ourselves by drawing the reader's attention to them and proceed to note a few general tendencies in Kalidasa.

Shakuntala's English translation added a great importance to the extension of Sanskrit Literature. The western world could understand well that Indian culture is great and its poets have higher ability to touch human feelings and emotions. Thus we are greatly thankful to Kalidasa.

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

KALIDASA-The Unsurpassed Giant of Lyrical Beauty

-Dr. Mitali Deb*

If learned opinion in the west is asked to name one of the outstanding literary figures from ancient India, the name in all probability would be that of Kalidasa, the Poet-dramatist par excellence, whom Sir William Jones 'discovered' towards the end of 18th century, and compared him to none less than Shakespeare. This is so not merely on account of the unsurpassed beauty of his lyrical compositions that have come down to us in seven of his known works, but also because he represents the most refined of India's cultural sensibilities developed through the ages. A poet of his stature flourished under a well deserved royal patronage and not only earned fame within his lifetime, but extended his influence on the world of performing arts for all times to come. In fact, close observation reveals that some of the recurring motifs in his works have meandered down fifteen centuries to get ensconced on the celluloid dramas !

On the basis of development of his literary style, attempt has been made to arrange Kalidasa's seven works in chronological order. The first of these is Ritusamhara (The Season-a poem), the second Malavikagnimitra (Malavika and

* Lecturer-(Sanskrit) Mahila mahavidyalaya B.H.U., Varanasi.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Agnimitra-a play), the third Maghadoota (The Cloud Messenger-a poem), the fifth Vikramorvashiya (Urvashi Won by Valour-a poem), the sixth Raghuvamsha (The Dynasty of Raghu-an epic) and the seventh, the most famous of all, Shakuntala (Shakuntala and the ring-a play). Kalidasa often draws inspiration from religious literature like the Ramayana, Mahabharata and the Puranas, and converts with his poemsdu-paragons of virute, making an indelible impression on the connoisseur.

Ritusamhara is a short lyric poem of one hundred and forty stanzas, consisting of a vivid description of the six season's of India. The point of view is essentially that of a love-lorn youth, experiencing to the brim the joy of life. The poem is replete with simile and metaphor, paradox and hyperbole, giving to the work a delightfully illusory character. With nature as the subject and unbridled poetic imagination as the instrument, even birds and beasts, creepers and trees, rivers and the sea, clouds and mountains become lyrical participants in the eternal love game that not only sustains life on earth, but makes it worth living. (It is this love which makes the perception of romance and beauty in familiar surroundings and everyday happenings). Something is moving. Thus the rainy season becomes the entourage of a king, with clouds as elephants, lightning as royal flags, and thunders as rattling drums. And in spring, the cuckoo is intoxicated with mango nectar and kisses his mate with passionate fervour. The buzzing drone on the lotus flower sing a love song in praise of

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

his beloved bee. The freshness, vivacity and vigour of the lyric is instantly captivating to the reader.

Meghadoota, the Cloud Messenger, it is believed, is the only idea that travelled from ancient China to India, the remaining traffic of ideas having gone in the opposite direction. In this poem, Kalidasa has achieved perfection in expressing the agonies of a separated lover. It is a reverie inspired by the first sign of a rains cloud.

The peom is in monologue, consisting of the path that the could must take, which covers the area from Ramtek in Vidarbha, Maharastra northward to the Himalayan home of Kubera, via Ujjain and Vidisha, the imaginary picture of his sorrowing wife, and the message itself. This enthralling exposition endeared the poet to the lovers of Indian poetry.

Kumarasambahava literally translates as the birth of Kumara, the war-god, and describes in the first part the events leading upto the marriage of the divine personalities of Siva and Parvati. The composition has been perceived by different people at several levels, ranging from the aesthetic to the spiritual, in an inseparable blend that is characteristic of Kalidasa's works.

Raghuvamsha is the narrative of the exploits of the kings of the Raghu dynasty, in which Kalidasa has fully captured the soul of India, the mind and heart of the Indian people and has articulated the nation's ideals and aspirations in immortal verse. It is a pageant of the supposedly historical heroes who strove to live by the ideals they cherished, and died upholding the

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

same.

Shakuntala is acknowledged universally as the poet's best work. In fact, it is with Sir William Jones' translation of this beautiful work that Kalidasa was first introduced to the West, which was followed by further scholarly enquiry and the highest of acclaim. The theme of the drama is derived from an obscure sub-plot of the great epic Mahabharata. Kalidasa deftly converts a selfish Shakuntala and a fickle Dushyanta into supreme ideals of man and woman torn between love and duty, and separated by cruel fate, to be reunited again by a strange turn of events. The highlight of this exquisite work is the boundless sorrow of the sage Kanva and his foster daughter Shakuntala at the time when she is ready to depart for her husband's abode. Kalidasa's easy grace, his mastery over language, his sense of the dramatic, as well as his aesthetic and moral sensibilities, are nowhere more evident that in Shankuntala.

Kalidasa's works exercised a substantial influence on later poets and dramatists, including Rabindranath Tagore, the only Indian to have received the Nobel prize for literature. Sri Aurobindo wrote profusely on Kalidasa's works. Popular sen timent in India cherishes ideals established by Kalidasa's varied compositions : a daughter as affectionate as Shakuntala, a wife as loyal as Sita, a husband as loving as Siva, a king as valiant and dutiful as Raghu.

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विश्वायन : प्रकृति चेतना : कालिदास और शेक्सपीयर

डॉ० अनुराधा बैनर्जी*

प्राचीन भारतवर्ष के मूर्धन्य रचनाकार कालिदास एवं पश्चिमी रेनेसाँ काल के साहित्य जगत् के महान प्रतिनिधि शेक्सपीयर समय के दुस्तर व्यवधान को पाटते हुए कई बार समीक्षकों के तुलनात्मक विश्लेषण का केन्द्र बन चुके थे । हालांकि इस देश पर अंग्रेजों के राजनैतिक, आर्थिक प्रभुत्व ने हमें दास की श्रेणी में रख दिया था, पर इस अपमानजनक स्थिति की कुछ अपरोक्ष खूबियाँ भी भारत की बौद्धिक चेतना को समृद्ध कर रही थीं । इसी समय ज्ञान के पिपासु विद्वान् परस्पर के अपरिचित साहित्य को जानने और विश्लेषित करने का प्रयास भी कर रहे थे । राजाज्ञा से भारतीय मन के विकास के लिए अंग्रेजी साहित्य को भारतीय शिक्षा व्यवस्था में समाहित किया गया–यह तो सर्वजन विदित है, पर उसी समय संस्कृत साहित्य के अनेक पश्चिमी गुणग्राही भी संस्कृत का गहन अध्ययन कर रहे थे । वे संस्कृत भाषा साहित्य का न सिर्फ इतिहास लिख रहे थे, बल्कि कालिदास और अन्य कवियों का अनुशीलन तथा विश्लेषण कर रहे थे । इसी परिपाटी को गेटे, मैक्समूलर, सर विलियम जोन्स, मोनियर विलियम्स, कीथ और अनेक अन्य विद्वान् सींच चुके हैं । यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा कालिदास साहित्य को इसी समय अथाह महत्त्व मिला और मोनियर विलियम्स ने उन्हें भारत का शेक्सपीयर कहकर सम्बोधित किया ।

कालिदास की कल्पना शक्ति और उदात्त काव्यात्मकता से प्रभावित समीक्षाक ने कालिदास अध्ययन में एक ऐसी परम्परा का सृजन किया जिससे आज भी इन दोनों सृजन सम्भार का तुलनात्मक अध्ययन करने की प्रेरणा मिलती है ।

बीसवीं इक्कीसवीं शताब्दी में जीने वाले हम सब जब विश्वायन की तरफ राजनैतिक, आर्थिक तर्कों से बढ़ रहे हैं तब अतीत के सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का भी एक बार फिर विश्वायन होना बहुत आवश्यक है । कालिदास और शेक्सपीयर की प्रासंगिकता को इस समय पुनः प्रमाणित करने का बहुत बड़ा अवसर है । वर्तमान

---

* अध्यक्षा-अंग्रेजी विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की कुछ ज्वलन्त समस्याओं के समाधान का 'पासवर्ड' (Password) सम्भवत: अतीत के इन रचनाकारों की रचनाओं में ही उपलब्ध हो जाय। वर्तमान में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पर्यावरण कक्षाओं का अनिवार्य किया जाना तथा पर्यावरण चेतना पर असंख्य बौद्धिक विवेचन, व्याख्यान और कार्यशालायें कहीं न कहीं हमारी पीढ़ी को पर्यावरण के प्रति की गई गल्तियों से उपजे अनुताप को दिखा रहे हैं।

कालिदास और शेक्सपीयर की पर्यावरण चेतना मेघदूत, ऋतुसंहार, अभिज्ञान शाकुन्तलम् और द टेम्पेस्ट की तरह के साहित्य का निर्माण कर हमें अन्धाधुन्ध प्रकृति दोहन के विषय में बार-बार सचेत कर चुके हैं, पर विडम्बना यह है कि अधिकतर महान लेखकों की प्रकृति चेतना को मात्र दो आयामों से ही समझा जाता रहा है–एक तो उसका सौन्दर्यपक्ष और दूसरा उसका दार्शनिक पक्ष। हम लोगों ने उनके साहित्य में निहित प्रबल जैविक पक्ष को उपर्युक्त दोनों पक्षों के सामने सर उठाने का मौका ही नहीं दिया। आज उसी सन्दर्भ को वैश्विक रूप से कालिदास और शेक्सपीयर के तुलनात्मक अध्ययन से सामने लाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

मेघदूतम् की कथावस्तु यक्ष पर आये हुए शाप और उसकी विरह यन्त्रणा के समय मेघ को दूत बनाकर रामगिरि से अलकापुरी भेजने की घटना में ही सिमटी नहीं है। न ही यह प्रकृति का मात्र आलंकारिक चित्रण ही है। यहाँ संकेत कुछ गहन है और वही कालिदास की समग्र प्रकृति चेतना का आधार है।

कृत्रिम जीवन के विधानों का मैल जब प्रकृति चेतना को ढक देता है तब उस मैल को धोने के लिए वर्षा के जल के जुड़ जाने की आवश्यकता है। मेघदूत के प्रसंग को लौटते हुये यह अनुभव होता है कि मानव पूर्णत: नगण्य और अशक्त है। वह अपनी बनायी हुई जीवन चर्या के कृत्रिम उपायों के आविष्कार में हो सकता है सिद्धहस्त हो, किन्तु प्रकृति नियंत्रित यथार्थ का इस जीवन के साथ सम्पर्क सूत्रों के टूटने से उसका पूर्णत: ध्वंस हो जायेगा। सामान्य रूप से मेघदूतम् यक्ष की कामना की कथा है किन्तु साथ ही पावस के मेघों की यथासमय एक विशाल भूखण्ड को सींचने की नैसर्गिक वार्ता भी। मेघों की यथार्थ गति पर छोटे-बड़े प्राण समूह निर्भर हैं। समय से मेघ न पहुंचने से मनुष्य की स्थिति वैसी दयनीय हो सकती है जैसी भीषण ताप लहरी से जल कर हम स्वयं ही समझ सकते हैं। यक्ष के लिए अवश्य ही मेघ संचार का व्यक्तिगत प्रयोजन है, किन्तु मेघ का संचार किसी व्यक्ति का प्रयोजन मिटाने के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण चराचर में आर्द्रता लाने तथा झुलसे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को शान्ति देने के लिए होता है । चाहे वह रूखे पर्वत क्षेत्र हों, चाहे वह सूखती नदियां हों, चाहे दावाग्नि से जले वृक्ष हों, या फिर ग्रीष्म ऋतु के तपते नर हों, मेघ का अस्तित्व तो परोपकार से जुड़ा है । यक्ष जानता है इसे और कहता है–

वारिधारासहस्त्रैःप्रशमनफला संपदो ह्युत्तमानाम् ।।

प्रकृति की बन्धुरूप में याचना करना मानव के लिए आज ध्वंस से परित्राण पाने का एक मात्र पथ है । यही सचेत वाणी हमें १६वीं शताब्दी के महान रचनाकार शेक्सपीयर में मिलती है । शेक्सपीयर यूरोपीय रेनेसाँ की एक अथाह सर्जना का नाम है । वह एक ऐसे आलोक स्तम्भ का रूप है, जो काल की सीमाओं को पार कर अपने मानवीय मूल्यों के कारण सर्वदा प्रासंगिक है । अपने समय की नब्ज को अद्भुत खूबी से पकड़ने वाला एक व्यक्तित्व, जो शताब्दियों के बाद भी जीवन बोध की पूर्णता के कारण आज भी उतना ही प्रोज्ज्वल है । जीवन की विसंगतियों का विश्लेषण करने की उसकी बेजोड़ क्षमता ने कभी उनसे कामेडी, कभी ट्रैजेडी, कभी हिस्ट्री नाटक तो कभी रोमान्स लिखवाये । मानव रिश्तों की जटिलताओं के गहन अध्ययन में वे स्वयं अपने आपसे ही तुलनीय हैं । यह प्रश्न है कि मानव जीवन को बहुत करीब से समझने वाले शेक्सपीयर, क्या इन्सान की शान्ति समृद्धि सुख को इस विशाल पृथ्वी में मानव तंत्र पर ही निर्भर मानते थे ? क्या वह सोचते थे कि मानव जीवन का सुख-दुःख केवल मानव निर्मित है ? जीवन के समन्वित रूप में, जिसमें पेड़-पौधे, हवा-पानी, मिट्टी, धूप इतने सारे प्राण तत्त्व हैं, वहां केवल मनुष्य को सर्वेसर्वा और दुनिया का सर्वशक्तिमान नियन्ता मान लेना कितनी प्रबुद्धता है ?

लेकिन शेक्सपीयर का मानवतावाद अपने समय के इस बहुल प्रचलित लोकप्रिय जीवनादर्श को स्वीकारते हुए मानव की जयकार करते हुये भी एक बिन्दु पर आ कर रोमांचकारी रूप से उससे भिन्न भी था । मानव केन्द्रिय मानवतावाद की जगह शेक्सपीयर ने अपनी रचनाओं की शृंखला में एक अद्भुत मानवीय दृष्टिकोण दिया है–जो मात्र मानव नहीं-मानव से भिन्न तत्त्वों का भी, जीवन को पूर्णता देने के लिये समावेश करता है । भिन्न तत्त्वों का आशय यहां प्रकृति का वह आयाम है, जो मानव की तरह ही इस जैविक परिदृश्य का हिस्सा है । इस जैविक प्रकृति की ओर शेक्सपीयर ने बड़े गूढ़ रूप से संकेत किया है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानव जीवन की महत्ता और क्षुद्रता की विसंगतियों को बड़ी क्षमाशील दृष्टि के साथ उन्होंने देखा है; किन्तु प्रकृति के अस्तित्व से मानव का टकराव, उसे दास बनाने की प्रवृत्ति उन्हें कभी समर्थन योग्य न लगी। अपने समय में उन्होंने देखा कि कैसे ज्ञान की भूख और उस ज्ञान से उपलब्ध-शक्ति से दूसरों को पद-दलित कर दास बनाने की वासना जन्म लेती है। ऐसी वासना ध्वसं का ही पूर्वाभास है। यही चेतना है The Tempest नाटक की गहराई में। शेक्सपीयर की अन्तिम रचना The Tempest नाटक मनुष्य की इसी दुरभिसन्धि के प्रति की गई सावधान वाणी है। मनुष्य की शुभ-बुद्धि जागृत करने की गहरी चेष्टा है। इसमें एक अद्भुत स्थिति पैदा कर वह बताते हैं कि किस तरह मनुष्य इस सम्पूर्ण प्रकृति पर्यावरण युक्त जगत का स्वामी नहीं, भागीदार बन सकता है। किस प्रकार अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए प्रकृति का उपयोग और दोहन न कर, उस पर आधिपत्य करने की प्रवृत्ति का अन्त कर सकता है।

द टेम्पेस्ट नाटक का तूफान मानव निर्मित है। Prospero ने अपनी इच्छाओं को साकार करने के लिये प्रकृति के तत्त्वों को अपने अधीन किया है। यह अतिप्राकृतिक तूफान उसी इच्छा का साकार रूप है। आज के सन्दर्भ में समझने पर द टेम्पेस्ट नाटक का यह तूफान कुछ स्तब्धकारी रूढ़ सत्यों की ओर संकेत करता है। यह तूफान पर्यावरणीय विपर्यय को समेटे है, जो मनुष्य ने ही उत्पन्न किया है। Prospero उस तूफान से शुभबोध जागृत होने से निकल पाया, पर क्या आज का मनुष्य स्वनिर्मित तूफान से निकल पायेगा ?

कालिदास और शेक्सपीयर ने कभी मनुष्य पर से अपना विश्वास नहीं खोया, क्योंकि दुर्गुणों की तरह सद्‌गुण भी मनुष्य में ही विकसित होते हैं। उनकी रचनाओं ने बावजूद मानव की दोषत्रुटि के, मानव के कल्याणकारी, लोकमंगलकारी विचारों और कार्यों को प्रकाशित किया है। उनकी प्रकृति दृष्टि में सचेतवाणी के साथ जिस कल्याणमयी दृष्टि की उद्‌घोषणा है, उसी की तर्ज पर आज के नये पर्यावरण चिन्तन के वातावरण में प्रकृति चिन्तन के पुनर्विवेचन करने की आवश्यकता है।

नूतन पर्यावरण चिन्तन के अन्तर्गत यह कहना बहुत जरूरी है कि अपने असंतुलित परिवेश में पृथ्वी अब पुनः **'सर्वे तु सुखिनः सन्तु'**, मन्त्र को दोहरा रही है।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाश्चात्य आलोचक एवं कालिदास

प्रो० राजीव रंजन सिंह*

संस्कृत वाङ्मय के जिन ग्रन्थों, विशेषकर साहित्यिक ग्रन्थों ने पाश्चात्य जगत् को सर्वाधिक आकृष्ट एवं चकित किया है, उनमें कालिदास का शाकुन्तलम् अन्यतम है। वस्तुत: विलियम जोन्स द्वारा शाकुन्तलम् के आङ्ग्ल अनुवाद के बाद ही पाश्चात्य जगत् संस्कृत-साहित्य की ओर उन्मुख हुआ। इस ग्रन्थ ने पाश्चात्य आलोचकों को इतना आकृष्ट किया कि उन्होंने बढ़-चढ़कर इसकी प्रशंसा में उक्तियाँ कहीं। जर्मन कवि एवं आलोचक गेटे के अनुसार-"यदि स्वर्ग लोक एवं भू लोक का प्रत्यक्ष मिलन अथवा विभिन्न ऋतुओं के पुष्प एवं फलों का प्रत्यक्ष संयोग एक साथ देखना हो तो उसके लिए शाकुन्तलम् से अधिक समर्थ कोई ग्रन्थ नहीं है"[१] अन्य पाश्चात्य आलोचकों की उक्तियाँ भी लगभग इसी तरह की हैं, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या पाश्चात्य आलोचकों की आलोचना कालिदास की रचनाओं का सही मूल्यांकन कर पाती हैं। पश्चिम में कविता मुख्यत: भावों की प्रस्तुति है, शब्दों का उसमें बहुत बड़ा दाय नहीं है, किन्तु भारतीय दृष्टि में कवि केवल अनुकर्त्ता नहीं है। यह सत्य है कि कोई भी कवि नये शब्द का निर्माण नहीं करता है,[२] किन्तु वह उत्तम परिवेषणकर्त्ता है। इसीलिये आचार्य वामन ने काव्य के अधिकार-विचार में 'अरोचकिन्' और 'सतृणाभ्यवहारी' शब्द का प्रयोग विवेकी और अविवेकी के स्थानापन्न रूप से किया है[३]। इस तरह कवि की सफलता केवल भावों के उपस्थापन में ही नहीं अपितु इस प्रकार से शब्दों के चयन और परिवेषण में भी है कि रचना लोकोत्तर आह्लादकारी हो जाये। इसीलिए वक्रोक्तिकार कुन्तक ने काव्य को केवल इस प्रकार के शब्दों और अर्थों का उपस्थापन माना है, जहाँ शब्द अर्थ विशेष को उपस्थित करने में एक मात्र समर्थ हों, उनका कोई विकल्प न हो सके तथा अर्थ सहृदयों के हृदय को अलौकिक आह्लाद दे सकने में समर्थ हो और उनकी परस्पर उपस्थिति एक दूसरे से बढ़कर प्रतिस्पर्द्धा युक्त हो। भारतीय आलोचना की दृष्टि में

---

* विभागाध्यक्ष-श्रमण विद्या संकाय-सम्पूर्णानन्द सं वि.वि.वाराणसी।

१. वासन्तं कुसुमं फलं च युगपत् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत् शांकुन्तल भूमिका।

२. नहि वैयाकरणकुलं गत्वा कथयति-कुरु शब्द प्रयोग इति महाभाष्य पश्पसाह्निक।

३. काव्यालङ्कार सूत्र १/१/१.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कवि की सफलता इसमें है कि वह पाठक को अपनी मन:स्थिति के स्तर पर पहुँचा ले। इसके अतिरिक्त लोक-जीवन के प्रति कवि की अपनी एक दृष्टि होती है जिसे वह अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

यदि इन पक्षों पर विचार किया जाये तो कालिदास अत्यन्त सिद्ध कवि ठहरते हैं। वे पाठक की अनुकूलता के मुखापेक्षी नहीं हैं; बल्कि अपने मनचाहे वर्णन के रास्ते पर पाठक को पहुँचा लेने में समर्थ हैं। मेघदूत में निर्जीव मेघ द्वारा सन्देश भेजने की बात किसी भी सुधी पाठक के लिये अटपटी सी हो सकती है। कवि भी इस बात को समझ रहा है इसलिये वह स्वयं मेघदूत में कहता है कि–

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः,

सन्देशार्था क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः[१]।

पाठक अपनी उलझन को यहाँ स्पष्ट पा लेता है, यही तो उसका भटकाव था; किन्तु जब अगली ही पंक्ति में कवि मानों एक उलाहना या चेतावनी देता है कि–

''कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाः चेतनाचेतनेषु''

तो वह मानों पाठक को एक चुनौती दे रहा होता है कि जब एक सामान्य कामार्त्त व्यक्ति चेतन और अचेतन के इस भेद को भूल जा सकता है तो फिर वह सहृदय कैसा असमर्थ है जो अपनी कल्पना में इस अभेद को नहीं जान पाता है और पाठक सहज रूप से इस भेद को भूलकर कवि की कल्पना के साथ-साथ चल पड़ता है रसास्वादन के लिये। कुमारसम्भव में भी यही स्थिति है। रूपगर्विता पार्वती का शङ्कर को रिझाने का प्रयास असफल हो चुका है, कामदेव भस्म हो चुका है और पार्वती उग्र तपस्या के द्वारा, जो रूप को और नष्ट कर देना वाला साधन है, शंकर को रिझाने के लिये प्रयासरत है। किसी भी विवेकी व्यक्ति को इस पर आपत्ति हो सकती है–

''इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः[२]''

इस उक्ति द्वारा कवि पाठक की इसी उलझन को सामने ले आता है और अगले ही चरणों में–

---

१. मेघदूतम् पूर्व-३

२. कुमारसम्भवम् ५-२।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः' कहते हुए यह बात पाठक के गले में उतार देता है कि बड़ी चीज पाने के लिए बड़ा त्याग भी अपेक्षित है। इस तरह वह ऐसा सार्वभौम कवि सिद्ध होता है जो पाठक के अनुसार नहीं चलता है बल्कि पाठक को अपनी कल्पना के साथ चलने को विवश कर देता है और वह भी पूरी खुशी के साथ।

कवि का शब्द चयन अद्भुत है। रघुवंशम् द्वितीय सर्ग के प्रथम श्लोक में–

'पत्नीप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां' की जगह **''जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्''** का प्रयोग करते हुए केवल 'जन्' धातु के प्रयोग मात्र से ही वह पूरे सर्ग की फलोपपत्ति को मुखर कर देता है। इसी तरह 'कुमारसम्भवम्' के पञ्चम सर्ग में शंकर के लिये **'पिनाकिनः'** की जगह **'कपालिनः'** शब्द का प्रयोग करते हुए वह जुगुप्सा के जिस भाव को प्रकट कर लेता है वह अनेक श्लोकों या पूरे प्रकरण के द्वारा भी सम्भव नहीं हो पाता है। यह न केवल शब्द एवं अर्थ-वक्रता का श्रेष्ठ उदाहरण है प्रत्युत कवि की काव्यपाकता का जीवन्त प्रमाण है। उसके किसी भी शब्द को बिना भाव-या सौन्दर्य को नष्ट किये बदल पाना सम्भव नहीं है।

इसी तरह कवि मानवीय भावों का समर्थ चित्रकार भी सिद्ध होता है। 'रघुवंशम्' में उसकी सीता भवभूति की सीता की तरह आदर्शों को समर्पित अतिमानवी की तरह उपस्थित नहीं होती। **''वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा''**– इस उक्ति से वह आक्रोश और अपमान-बोध की सहज प्रतिक्रिया को व्यक्त कर रही है, किन्तु उतनी ही मर्यादित और गौरवमयी भी है। यही स्थिति शाकुन्तलम् में दुष्यन्त के दरबार में अस्वीकृता शकुन्तला की भी है। वह अत्यन्त सहज मानवीय पात्रों को अपनाता है और उसे गढ़ता हुआ आदर्श मानव की उच्चता तक पहुँचा देता है। प्रायः उसके पात्र परस्पर विपरीत स्वभाव वाले होते हैं–शार्ङ्गरव-शारद्वत, अनुसूया प्रियम्बदा, कण्व-मरीचि ये सारे इसके उदाहरण हैं। इस वर्णन के पीछे कवि की अपनी जीवन दृष्टि है। वह मानकर चलता है कि मनुष्य मानवीय कमजोरियों से घिरा हुआ है। उसकी तरल भौतिक इच्छाएँ उसमें विकार पैदा करती हैं, किन्तु तपः और प्रायश्चित ऐसा साधन है जो इन स्थूल दोषों को परिमार्जित कर देता है। तब एक सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि उपस्थित होती है, भौतिक स्पृहाओं की जगह शुद्ध प्रेम रह जाता है, सारे दोषों का अलौकिक स्पृहणीय रूपान्तरण होता है और सफलता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूर नहीं रह जाती है ।

कवि का जीवन दर्शन विकासवाद को स्वीकार करता है । निश्चय ही प्रेम का आरम्भ भौतिक सौन्दर्य और आकर्षण से होता है, पर विरह, तपस् और त्याग की आँच में तपकर वह अलौकिक आध्यात्मिकता के स्तर पर निखर जाता है । मर्यादाओं को तोड़ती हुई शकुन्तला या रूपगर्विता पार्वती का सौन्दर्याकर्षण भले ही कुण्ठित हो जाये पर धूसरवदना एकवेणी शकुन्तला का प्रेम तो दुष्यन्त को पैरों में गिरा लेने में बिल्कुल नहीं चूकता है । पार्वती का सौन्दर्य और कामदेव का प्रयास तो निष्फल हो सकता है पर अपर्णा की निष्ठा और तप: जर्जर सुंदरता अकुण्ठित रूप से परमेश्वर को भी क्रीतदास बनाने में समर्थ है भौतिक का अलौकिक में विकास लोक और लोकोत्तर का यह समन्वय कालिदास के रचना-दर्शन की श्रेष्ठता और अद्वितीयता है ।

इस तरह कालिदास 'भव्याद् भव्यतर'-इस जीवन चरित के चितेरे सिद्ध होते हैं जिनके न केवल शब्द, अर्थ एवं भावों पर पूर्ण पकड़ है बल्कि वे अपनी कल्पना के अनुकूल पाठक को मोह लेने और चला लेने में समर्थ हैं । कवि के परिवेशन-कर्म की सफलता का यह श्रेष्ठ नमूना है । पश्चिम के आलोचकों ने कालिदास के काव्य तथा वर्णन शैली की मधुरता को तो पकड़ा किन्तु उनकी श्रेष्ठता के ऊपरिलिखित पक्ष उनकी समालोचना-दृष्टि से प्राय: ओझल रहे । ऐसी स्थिति में सङ्कोच से यह कहना असङ्गत नहीं हो सकता है कि पाश्चात्य आलोचकों ने कालिदास के साहित्य के पक्ष विशेष को तो देखा पर उनकी सम्पूर्ण समालोचना करने में वे सफल नहीं रहे ।

सहायक पुस्तकें

१. कालिदास ग्रन्थावली
२. पतञ्जलि–महाभाष्य
३. वामन–काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति
४. कुन्तक–वक्रोक्तिजीवितम्
५. क्षेमेन्द्र–औचित्यविचारचर्चा

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्विजेन्द्रलाल राय की दृष्टि में अभिज्ञानशाकुन्तलम्

डॉ० शान्ता चटर्जी*

महाकवि कालिदास की रचनाओं की लोकोत्तरता का सर्वप्रमुख निदर्शन यह है कि आन्तरिक अर्थ में ही ये रचनायें देश और काल की सीमाओं को पार कर जाती है। बाणभट्ट, राजशेखर, मल्लिनाथ जैसे सुप्राचीन विद्वानों को ही नहीं, सभी काल के साहित्य वेत्ताओं को, समालोचकों को अपनी ओर आकृष्ट कर ही लेती है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध बंगला कवि एवं नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय की दृष्टि का अनुसरण करने का प्रयास किया गया है।

द्विजेन्द्रलाल राय स्वयं भी नाटककार थे "चन्द्रगुप्त" "शाहजहां" इत्यादि ऐतिहासिक नाटकों के रचनाकार, द्विजेन्द्रलाल के नाटक बार-बार अभिनीत हैं तथा हिन्दी इत्यादि भाषा में अनुवाद भी हुआ है, स्वाभाविक रूप से उन्होंने कालिदास के नाटकों की ही समीक्षा की है। उंसमें भी मूलत: 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का (बांगला भाषा में प्रकाशित "साहित्य" नामक एक मासिक पत्रिका में 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और उत्तररामचरित की समीक्षा उन्होंने कई अंकों में विस्तारित रूप से की थी। ये ही निबन्ध बाद में लगभग १९२९ में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुए थे)।

द्विजेन्द्रलाल पुनर्जागरण काल के विद्वान् थे। उनके सामने संस्कृत नाटकों के साथ-साथ अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच साहित्य के अतिरिक्त ग्रीस कवि होमर की रचनायें भी थी, पाश्चात्य काव्य शास्त्र था। जिसके आलोक में उन्होंने दोनों महाकवियों की समीक्षा की है।

सर्व प्रथम दोनों नाटकों के कथानक में किये गये परिवर्तन और मूलकथा स्रोत (अभिज्ञानशाकुन्तल के लिये महाभारत) की तुलना करते हुए दिखाया है कि कवि कालिदास ने अपने नायक को सर्वगुणान्वित बनाने के लिये पूर्ण प्रयास किया है तथापि निपीडिता नायिका के प्रति कारुण्यसे नायक दुष्यन्त के प्रति कवि का क्रोध उनके हृदय को विदीर्ण कर गैरिकरस की भाँति प्रवाहित हुआ है, पंचम अंक में गौतमी तथा शार्ङ्गरव की उक्तियाँ इसका निदर्शन हैं।

द्वितीयत: द्विजेन्द्रलाल ने नायक के चरित्र का विश्लेषण किया है। उनके

* रीडर-संस्कृत विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय कमच्छा, वाराणसी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुसार कालिदास ने दुष्यन्त के चरित्र को भरसक ऊँचा उठाने और दोषों से रहित बनाने का प्रयास किया है। तथापि कालिदास नायक को उन धीरोदात्त गुणों से युक्त और सर्वजन वन्दनीय, अनुकरणीय नहीं बना सकें जो कि सहजता से भवभूति के उत्तर- रामचरित के नायक में हैं, अथवा कालिदास के वर्णित रघुवंशीय राजाओं में है। दुष्यन्त की प्रशंसा करने के सम्पूर्ण प्रयास के उपरान्त भी कवि उनकी कोई विजयगाथा नहीं सुना पाते। वे रघु के समान दिग्विजयी नहीं है। शाकुन्तलम् के द्वितीय अंक में सेनापति के कथन के माध्यम से महाराज दुष्यन्त की शस्त्रविद्या की जो प्रशंसा की गई है–

'उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले'[१], उससे मात्र यह सिद्ध होता है कि दुष्यन्त शस्त्रविद्या जानते हैं–किसी प्रबल अत्याचारी शत्रु के विरुद्ध खड़े होने, प्रजा की रक्षा करने जैसे गुणों का दर्शन उनमें नहीं होता है, उनका शरीर मृगया के श्रम से कृश हुआ[२] है प्रजा रक्षा से नहीं, हां केवल इतना कहा जा सकता है कि वह मृगया में धूप और श्रम को सह रहे हैं—अन्तःपुर में होते हुए दिन नहीं काट रहे हैं। फिर क्यों बनाया महाकवि ने दुष्यन्त को विश्वविश्रुत नाटक का नायक ? उनके पास आदर्शों और चरित्रों का कोई अभाव तो नहीं था।

वस्तुतः कालिदास ने महाकाव्यों के नायकों का और नाटकों के नायकों का चयन समान नहीं किया है। महाकाव्यों के नायक के रूप में उन्होंने सर्वथा आदर्शभूत वन्दनीय पात्रों का चयन किया, जो सर्वातिरिक्त और सम्पत्र, समस्त तेजस्वियों से भी अधिक तेजस्वी सुमेरु पर्वत के समान सर्वोच्च अचंचल हो।[३] ऋषि-की होम धेनु के लिये आत्मोत्सर्ग करने के लिये तत्पर दिलीप, विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान करने वाले रघु, सागर पर सेतु बन्धन करने वाले राम महाकाव्य के नायक के रूप में महानायक के रूप में कवि को अभीष्ट है, नाटक के नायक के रूप में नहीं। क्योंकि वे महानायक सामान्य लोक के लिये दुरधिगम्य आदर्श हैं, लोक उनकी यशोगाथा गा सकता है–परन्तु संलापों के माध्यम से उनकी मनोभावनाओं का विश्लेषण नहीं कर सकता है। कुमारसम्भव के नायक के समान जो 'न जाने क्यों तपश्चर्या करता है[४], उसका वाचिक अनुकरण के द्वारा साधारणीकरण उतना सहज नहीं होगा। द्विजेन्द्रलाल राय मानते हैं कि इसीलिये महाकवि कालिदास ने एक ऐसे

---

१. शाकुन्तलम्। अंक-२ श्लोक ५
२. शाकुन्तलम्। अंक-२ श्लोक ४ तथा ५
३. रघुवंश। सर्ग-१ श्लोक-१४
४. कुमार–सर्ग १ श्लो० ५७।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा को नायक के रूप में चुना जो पूर्ण मानव हो, अच्छाई और बुराई के द्वन्द्व से घिरा हुआ उत्थान पतनशील मानव ।

दुष्यन्त प्रथम अंक में आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् बहुत ही सामान्य दिखायी देते हैं, छिप कर लड़कियों को देखना उनकी बातें सुनना और पूछे जाने पर भी अपना सत्य परिचय न देना–राजोचित गरिमा से उसके पतन का सूत्रपात है । यद्यपि उसके लिये कालिदास 'राजर्षि' शब्द का प्रयोग करते हैं पर वे जानते हैं–कि दुष्यन्त का यह यश उसके चारणों के द्वारा गाया गया यश[१] है; जन जन में स्वत: प्रसारित नहीं है । राम के समान 'पौरकान्त' नहीं हैं दुष्यन्त । उन्हें याद दिलाना पड़ता है–**"आर्तत्राणाय व: शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि"**[२] और उसी द्वितीय अंक में राजधानी की ओर प्रत्यावर्तित होने वाले मित्र विदूषक से शकुन्तला के लिये अपने व्यक्त किये गये मनोभाव का अपलाप[३] कर लेना राजा दुष्यन्त को पतन की एक और सीढ़ी उतारता है । जिस प्रेम को वह राजधानी और राज अन्त: पुर में स्वीकार करने में संकोच करते हैं—उसी प्रेम की प्राप्ति के लिये वे पिता काश्यप के सोमतीर्थ से वापस आने की प्रतीक्षा नहीं कर पाते । ये ऐसे विन्दु हैं—जिस पर दुर्वासा का अभिशाप भी पर्दा नहीं डाल पाता ।

द्विजेन्द्र लाल राय—इसके पश्चात् दुष्यन्त के उत्थान और उत्थान के प्रयासों को भी दर्शाते हैं और इसका प्रारम्भ पंचम अंक में होते हुए दिखता है जब वह अपुत्रक अवस्था में मृत सार्थवाह की सम्पत्ति राजकोष में सम्मिलित नहीं करते, उसके भावी उत्तराधिकारी के लिये सुरक्षित रखने का आदेश देते हैं । इससे भी वढ़कर उन्होंने स्वयं को प्रजा के प्रत्येक बिछड़े हुए प्रियजन के रूप में घोषणा की ।[४] यह प्रशासकीय उत्तरदायित्व की सीमा को पार कर आत्मीय स्पर्श है । अपने प्रेम और विरह से ऊपर उठते हुए 'स्वसुखनिरभिलाष'[५] होते हुए दुष्यन्त । परन्तु दुष्यन्त का वास्तविक संघर्ष पंचम अंक में है । वही अव्याजमनोहर शकुन्तला पुन: आकर उनके सामने उपस्थित है उसके प्रति किंचित् मात्र आकर्षित नहीं होते हैं, कारण—वह अब परिणीता स्त्री है । वे ऋषियों के दुवर्चनों को उस समय मर्यादा के कारण सहते हैं

---

१. शाकुन्तल-अंक-२-श्लोक १५
२. वहीं अंक १ श्लोक ११,
३. वहीं अंक-२ श्लोक १९ ।
४. अभिज्ञान शाकुन्तल अंक-६ श्लोक २३ ।
५. वहीं अंक ५-श्लोक-७

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस समय वह स्वयं को निरपराध जान रहे होते हैं। यहां तक कि नारी की करुण और दयनीय स्थिति के प्रति सहानुभूति के कारण अपने ऊपर लगाये गये लांछनों के उपरान्त भी वह दु:खिनी शकुन्तला को विश्वास कराना चाहते हैं[१]। द्विजेन्द्रलाल राय की दृष्टि में यहीं दुष्यन्त एक पूर्ण मानव के रूप में विकसित होते हैं। "हाँ एकता मानुष वटे।"[२]

इस प्रकार से द्विजेन्द्रलाल राय शकुन्तला के चरित्र निर्माण में कालिदास का विशेषत्व, अभिज्ञान शाकुन्तलम् के नाट्यतत्व, काव्यकला, प्रकृति वर्णन का सम्यक् विश्लेषण करते हैं इनमें से प्रत्येक बिन्दु का उल्लेख न करने पर भी यहां एक बात का दिग्दर्शन करना चाहती हूँ–द्विजेन्द्र लाल राय ने कालिदास की कविता को समझाने के लिये पंचम अंक के 'रम्याणि वीक्ष्य'[३] इत्यादि श्लोक का विश्लेषण करके दिखाया है—इस प्रकार की कविता न केवल संस्कृत साहित्य में अपितु विश्व के अन्य भाषाओं के साहित्य में भी अनुपलब्ध है।

द्विजेन्द्रलाल राय कहते हैं–'घटनाओं के वैचित्र्य से, कल्पना की कोमलता से, भाषा की सरलता से अभिज्ञान शाकुन्तल श्रेष्ठ है, कालिदास की विश्वजनीन प्रतिभा का प्रधान लक्षण यही है कि दो हजार वर्ष पूर्व लिखित यह नाटक प्राचीन और नवीन अलंकार शास्त्रों को सन्तुष्ट करता हुआ, आचार, नीति तथा अवधारणाओं के परिवर्तनों को तुच्छ करता हुआ समस्त समालोचकों की तीव्र दृष्टियों के सामने अचल पर्वत के समान सगर्व खड़ा है, वह रचना उषा के उदय के समान उस दिन जितना सुन्दर था आज भी उतना सुन्दर है।[४]

कालिदास की निरंकुशता–महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार

महावीर प्रसाद द्विवेदी कालिदास को संस्कृत कविता रूपी आकाश का पूर्ण चन्द्र कहते हैं। किन्तु उनकी निरंकुशता पर उन्होंने इस प्रकार विचार किया है–अपने इष्ट शंकर पार्वती का शृंगार वर्णन, उपमा हीनता, उद्वेग जनक स्थिति, अनौचित्य दर्शक उक्ति, रस सम्बन्धी अनौचित्य, व्याकरण की अशुद्धियाँ, इतिहास सम्बन्धी अनौचित्य, यतिभंग, पुनरुक्ति, अधिकपदत्व, श्रुतिकटुत्व, जगुप्सा-ग्राम्य भाव अविमृष्ट विधेयांश, क्रमभंगता—इनकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

अभिलाषा त्रिपाठी –शोध छात्रा-संस्कृत विभाग, का.हि.वि.वि.

१. वहीं अंक ७ श्लो० २४।
२. कालिदास और भवभूति-अध्याय-३
३. शाकु० अंक-५ श्लोक-२।
४. कालिदास और भवभूति—द्विजेन्द्रलाल राय।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की दृष्टि में महाकवि कालिदास की कृतियाँ

डॉ० कृष्णा गोस्वामी*

रवीन्द्रनाथ बँगला भाषा में रचना करने वाले कवियों में महानतम है, उनकी रचनाओं का विशाल संग्रह प्रकाशित है। खंड काव्य के साथ-साथ उन्होंने उपन्यास नाटक, कहानी, निबन्ध, गीत आदि नाना प्रकार की साहित्यिक विधाओं में अपनी लेखनी का प्रयोग किया। उनके चिन्तन के विस्तृत आयाम, शाश्वत और वैश्विक समस्याओं पर उनका व्यावहारिक दृष्टिकोण, काव्य की परिकल्पना के क्षेत्र में उनके विविध प्रयोग आदि विशेषताओं के कारण उनको विश्वकवि की अभिधा से विभूषित किया जाता है।

रवीन्द्रनाथ की साहित्य साधना बाल्यकाल से ही शुरू हो गयी थी। मात्राओं से परिचित होने के साथ-साथ ही वे छन्द के माधुर्य के प्रति आकर्षित हुए थे। अपने गुरुजनों के साहित्य प्रेम और लेखन परम्पराओं के आधार पर ही रवीन्द्रनाथ की साहित्यिक शिक्षा की बुनियाद तैयार हुयी थी। उनके पिता महर्षि देवेन्द्र नाथ उपनिषद् साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। रवीन्द्र के सर्वज्येष्ठ भ्राता द्विजेन्द्रनाथ कवि थे। मध्यम भ्राता ज्योतिरिन्द्रनाथ उच्चकोटि के नाट्यकार थे। तीसरे भाई सत्येन्द्र नाथ ठाकुर आई सी एस परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले प्रथम भारतीय थे और पाश्चात्य विचारधारा और परम्परा को निकट से जानने का अवसर उन्हें अपने उच्च सरकारी पद के कारण प्राप्त हुआ था।

विद्यालय के नियमित पठन-पाठन से रवीन्द्रनाथ हमेशा विमुख रहते थे, परन्तु कवियशःप्रार्थी बालक के लिये संस्कृत साहित्य का अध्ययन नितान्त आवश्यक था। संस्कृत साहित्य भारत के सभी क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य के लिये वैचारिक आधार प्रस्तुत करती है, भारतीय परम्परा का आकर संस्कृत साहित्य ही है, सभ्य और नागरिक जन के भाषा के रूप में लम्बे समय तक संस्कृत का महत्व

---

* अध्यक्षा–प्रा.भा.इ.स. एवं पुरातत्त्व, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहा। इसलिये प्राचीन भारत के मनीषियों की रचनायें संस्कृत भाषा में ही प्राप्त होते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर संस्कृत की जिन रचनाओं के द्वारा विशेष रूप से प्रभावित हुए थे उनमें उपनिषद्, महाभारत और रामायण सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे। इसके अलावा भवभूति, कालिदास, वाणभट्ट और वैष्णव काव्य का भी उन्होंनें गहन अध्ययन किया था।

रवीन्द्रनाथ के साहित्य-जीवन के प्रथमार्ध में कालिदास और अन्य कई साहित्यकारों के सन्दर्भ में कई रचनायें प्रकाशित हुई थी। मानसी नामक काव्य ग्रन्थ (प्रकाशन-१८९०) के अन्तर्गत मेघदूत नामक गीति काव्य इस सिलसिले का पहला उदाहरण है। चैतालि काव्य ग्रन्थ (प्र०-१८९६) मेघदूत, कुमारसम्भव, कालिदासेर प्रति और ऋतुसंहार चतुर्दशपदी कवितायें हैं। कल्पना काव्य ग्रन्थ (प्र०-१९००) में दो कवितायें मदन दहन के कुमारसम्भव में वर्णित प्रसंग के आधार पर रचे गये थे। चित्रा (प्र० १८९६) कल्पना (प्र० १९००) और क्षणिका (प्र०-१९०१) नाम के काव्य ग्रन्थों में कई ऐसी कवितायें हैं जो कालिदास के उद्‌गार के आधार पर लिखी गयी है। इन कविताओं में विजयिनी, स्वप्न और सेकाले शीर्षक कवितायें बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

रवीन्द्रनाथ ने कालिदास की कृतियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए कई निबन्ध भी लिखे। अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मेघदूतम् और कुमारसम्भव उनके प्रिय आलोच्य ग्रन्थ थे। इन निबन्धों का संकलन प्राचीन साहित्य नामक ग्रन्थ में (प्रकाशन-१९०२) किया गया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत इन रचनाओं के अध्ययन के आधार पर कालिदास के सन्दर्भ में रवीन्द्रनाथ के विचारों को निम्न बिन्दुओं में समेटा जा सकता है–

१. कालिदास के प्रकृति वर्णन का काव्यात्मक विश्लेषण।

२. कालिदास के साहित्य का आलंकारिक और वैचारिक मूल्य का निर्धारण।

३. भारतीय समाज दर्शन में प्रतिपादित 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीयाः' के आदर्श का प्रतिष्ठापन।

४. लोक हित और मंगलबोध की भावना का स्पष्टीकरण।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रवीन्द्रनाथ टैगोर की दृष्टि में कालिदास

डॉ० नाहीद आबिदी*

कविकुलगुरु कालिदास भारतीय साहित्य के जाज्वल्यमान रत्न हैं। काव्य-मर्मज्ञों ने उन्हें 'कविता कामिनी का विलास' कहा है और प्राचीन कवियों की गणना के विषय में उन्हें 'कनिष्ठिकाधिष्ठित'[१] बताकर उनकी तुलना में ठहरने वाले किसी अन्य प्रतिस्पर्धी कवि के अस्तित्व की संभावना का प्रत्याख्यान किया है। कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं, जिनके पात्र भारतीयता की भव्यमूर्ति हैं। जीवन की विविध परिस्थतियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में विशेष रूप से होगी, जनता का वही सच्चा एवं प्रिय कवि होगा। भारतीय समाज का सच्चा रूप उनके काव्यों में दृष्टिगोचर होता है तथा उनके नाटकों में अपना अभिनय दर्शाता है।

कालिदास की कृतियों के अनुशीलन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि और व्यास के समान कालिदास भी राष्ट्रिय चेतना के विशिष्ट पटल अथवा स्वरूप का उन्मीलन एवं प्रतिनिधित्व करते हैं। लगभग दो शताब्दी पूर्व कालिदास को भारत का शेक्सपियर कहा गया था। तब से कालिदास की शेक्सपियर के साथ तुलना काव्य दृष्टि से कहाँ तक सङ्गत एवं समीचीन है, इस विषय में प्रचुर मतभेद का अवकाश विद्यमान है। किन्तु एक दृष्टि से दोनों महाकवि परस्पर समान हैं। कालिदास भारतीय जीवन के सच्चे प्रवक्ता हैं। भारतवर्ष की आत्मा उनमें जीती है और साँस लेती है। वह भारतवर्ष जिसकी अखण्ड परम्परा में हम जीवित रहे हैं, उनमें सुरक्षित है, हमारे विचार-विमर्श, रुदन-हास्य और कर्म-धर्म करने का सम्पूर्ण ढंग प्राय: अद्यापि वही है जो कालिदास ने अपनी कृतियों में चित्रित किया है। भारत की धरती से तथा उसकी प्रकृति से उन्हें प्रगाढ़ अनुराग है और इसी कारण अपनी ललित कल्पना के रङ्गों से रञ्जित कर, उन्होंने उसके अत्यन्त प्राणवान् चित्र अंकित किये हैं।

विश्व के साहित्याकाश के अमर भास्वर नक्षत्रों में कालिदास, शेक्सपियर,

---

* अतिथि प्रवक्ता–महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ।

१. पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकधिष्ठितकालिदास:।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गेटे, मैटरलिंक की भांति रवीन्द्र नाथ टैगोर भी ललित कवि थे, तदनंतर नाटककार, फिर कथाकार और उपन्यासकार सबके अन्त में थे। स्वभाव और शिक्षा-दीक्षा दोनों से ही महाकवि ललित कलाओं, साहित्य, संगीत और चित्रकला की ओर विशेष उन्मुख थे। इनके गीतों की स्वर लहरी क्षितिज के सभी कोणों में सर्वत्र प्रतिध्वनित है। रवीन्द्र में मनीषा और दर्शन की अतल गहराइयों का परिशीलन समाविष्ट है। वे रसार्णव कवि और सरस साहित्य-स्त्रष्टा थे। उनकी शिरा-शिरा में अरस्तु द्वारा प्रख्यापित सत्य, शिव एवं सुन्दर का सिद्धान्त स्वयमेव पिरो गया था। किन्तु उद्भावनाओं के महारथी ने तीनों के क्रम को अपने प्राणास्पन्दनानुसार बदल दिया था। 'सौन्दर्य' उनकी संर्जनाओं में 'महतो महीयान' सारभूत तत्त्व के रूप में अंगीकृत है। 'सत्य' उसके पदचाप का आकांक्षी है। 'शिव' इन दोनों की पुष्पिका में परिणति के रूप में अपनी मधुर मुस्कान बिखेरता रहता है और जीवन की आयोजनाओं एवं क्रियाकलापोंके ताने बाने में सांप्रतता का सम्यक् निर्वहण उसका स्वस्थ ध्येय होता है।

ललित कवि का मूल्यांकन ललित कवि ही कर सकता है। महाभारत को जैसे एक साथ कर्म और वैराग्य का काव्य कहा जा सकता है वैसे ही कालिदास भी सौन्दर्य-भोग और भोग-वैराग्य के कवि कहे जा सकते हैं। कालिदास के काव्य केवल सौन्दर्य के विलास में ही समाप्त नहीं हुए हैं। सौन्दर्य-विलास को लाँघकर ही कवि की लेखिनी ने विराम लिया है। कवि रवीन्द्र का दृढ़ विश्वास है कि यदि यूरोप का कवि शकुंतला नाटक बनाता तो वह इस नाटक को वहीं अन्त कर देता जहाँ पर मल्लाह के हाथ से अँगूठी पाकर दुष्यंत को अपनी भूल मालूम पड़ी थी और उन्होंने परिताप किया था। अन्तिम समय में स्वर्ग से लौटते समय मार्ग में अकस्मात् दुष्यंत का शकुंतला से जो सम्मिलन हुआ है वह यूरोपीय नाटक पद्धति के अनुसार आवश्यक घटना नहीं थी। क्योंकि शकुंतला नाटक के आरम्भ में जिस बात की सूचना हुई है, उसका चरम फल यह वियोग ही है। परंतु यहाँ फिर उसके बाद भी दुष्यंत और शकुंतला का पुनर्मिलन अनेक बाहरी उपायों द्वारा देवता के अनुग्रह से कराया गया है।

कुमारसंभव में भी आधुनिक कवि, मनोरथ विफल होने के समय पार्वती के दुःख और लज्जा के बीच ही काव्य को समाप्त कर देता। अकाल-वसंत में रक्तवर्ण अशोक कुंज में शिव के प्रदीप्त क्रोधाग्नि के प्रकाश में अधोमुखी और लज्जा से लाल हो रही पार्वती अपने निष्फल फूलों के गहने पहने पाठकों के व्यथित हृदय के करुणा पूर्ण रक्त-पद्म पर आकर खड़ी होती है। अकृतार्थ प्रेम की वेदना सदा उन्हें घेरे रहती

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। आधुनिक समालोचकों की राय में यहीं पर काव्य का उज्ज्वलतम सूर्य अस्त हो जाना चाहिए। इसके बाद विवाह की रात्रि का वर्णन व्यर्थ एवं निरर्थक है। विवाह नित्य होने वाले सांसारिक कार्यों की भूमिका है। वह नियमबद्ध समाज का एक अंग है। अतः कालिदास ने इस प्रेम के उन्मत्त सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं की। उन्होंने उसे तरुण सौन्दर्य के उज्ज्वल रंग से अंकित किया है। परन्तु इस अत्यन्त उज्ज्वलता में ही अपने काव्य की समाप्ति नहीं की है। अपितु जिस प्रशांत और हल्के रंग के परिणाम की ओर वह अपने काव्य को ले गये हैं, वही उनके काव्य का अन्तिम वक्तव्य एवं उद्देश्य है। महाभारत का समस्त कर्म जैसे महाप्रस्थान में समाप्त हुआ है, वैसे ही कुमारसंभव के सारे प्रेम का वेग मंगल मिलन में ही समाप्त किया गया है।

रवीन्द्र की दृष्टि में कुमारसंभव और शकुंतला की एकत्र तुलना करने पर गूढ़ भाव से दोनों काव्यों का वर्णनीय विषय एक ही है। दोनों काव्यों में कामदेव के द्वारा जो मिलन कराने का प्रयत्न किया गया है उसमें देवशाप की बाधा आ पड़ी है वह मिलन असंपूर्ण तथा असंपन्न ही रह गया। तदनन्तर कठिन दुःख और दुःसह विरह-व्रत के पश्चात् जो मिलन हुआ उसकी प्रकृति दूसरे प्रकार की है। वह मिलन सौन्दर्य के सारे बाह्य आवरण को हटाकर निर्मल वेश में कल्याण की शुभ्र दीप्ति से कमनीय हो उठा है। घमंडी कामदेव ने जिस मिलन का काम अपने हाथ में लिया था, उसका आयोजन बहुत बड़ा था। समाज के घेरे के बाहर दो तपोवनों में अकारण नवप्रेम को कालिदास ने, जैसे कौशल से, वैसे ही समारोह से सुन्दर अवकाश दिया है। योगी महादेव उस समय हिमालय पर्वत पर बैठे तपस्या कर रहे थे। शीतल पवन, कस्तूरी की महक और किन्नरगण के गान की ध्वनि लिये हुए गंगा के प्रवाह से सिंचे देवदारु के वृक्षों की पंक्तियों को धीरे-धीरे हिला रहा था। वहीं पर एकाएक वसंतुऋतु का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिणादिगङ्गना ने, तुरंत फूले अशोक के नवीन पल्लवों के समूह को हिलाते हुए गरम-गरम लम्बी सांस छोड़ी। भ्रमर और भ्रमरी पुष्प के एक ही पात्र में मधुपान करने लगे और स्पर्श सुख से आँखें बंद किये बैठी हुयी मृगी के अंगों को कृष्णसार मृग अपनी सींग से खुजलाने लगा।

तपोवन में वसंत के प्रादुर्भाव और तपस्या के कठोर नियम-संयम के कठिन घेरे में प्रकृति ने एकाएक अपने स्वरूप का विस्तार किया। कालिदास के तपोवन जैसी वसंत की विचित्र शोभा प्रमोदवन में भी नहीं देखी जाती। महर्षि कण्व का मालिनी नदी के तट पर जो आश्रम था, वहां भी वृक्षों के पत्ते हवन के धूयें से काले

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़ गये थे। मुनियों के गीले वल्कल वस्त्रों से टपकते हुए जल की रेखा से अंकित थे। विश्वस्त आश्रम के मृग निर्भय होकर कौतूहल के साथ रथ की घड़घड़ाहट तथा धनुष की टंकार सुन रहे थे और नवकुसुम यौवना नवमालिका लता भी आम्रवृक्ष से लिपटी हुई प्रिय-मिलन के लिए उत्सुकता बढ़ा रही थी। चारों ओर वंसत के भारी समारोह के मध्य में पार्वती वसन्त पुष्पों से सुसज्जित मनोहर वेश में दिखाई पड़ीं और इधर देवदारु वृक्ष के नीचे एक वेदी पर व्याघ्र चर्म के आसन पर ध्यानमग्न महादेव आत्मतत्त्व का दर्शन कर रहे थे। उसी समय असमय के वसंत में कामदेव इन दोनों के मिलन के लिए उद्यत था। कुमारसंभव के समान ही कण्व के आश्रम का भी दृश्य था। कहाँ वल्कल पहनने वाली तपस्वी की कन्या ! और कहाँ सागर-पर्यंत पृथ्वी के अधीश्वर चक्रवर्ती सम्राट ! क्षण भर में ही देशकाल-पात्र उलट-पुलट देने वाले कामदेव की शक्ति अमोघ है।

रवीन्द्र की दृष्टि में जिस प्रेम में कोई बंधन नहीं, कोई नियम नहीं, वह प्रेम ही नहीं; जो सहसा स्त्री पुरुष को अपने वश में करके उनके संयम रूपी किले को ध्वस्त कर उस पर अपनी विजय-पताका न गाड़ दे। उस प्रेम की शक्ति को कालिदास ने स्वीकार किया है। किन्तु उसके निकट आत्मसमर्पण नहीं कर दिया। कालिदास ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो अंध प्रेम हमें अपने कर्तव्य से विमुख करता है वह प्रभु के शाप से खंडित है, ऋषि के शाप से नष्ट हो जाता है और देवता की क्रोधाग्नि में जल जाता है। शकुंतला ने जब आतिथ्य धर्म को कुछ न समझकर दुष्यंत को ही सब कुछ समझ लिया तो उस प्रेम से शकुंतला का कल्याण नहीं हुआ। जो प्रेम तपोवन में तपस्वी की तपस्या भंग करने के लिए, गृहस्थ के घर में उसके सांसारिक धर्म को परास्त करने के लिए उत्पन्न होता है, वह आंधी के समान अन्य को नष्ट करता हुआ अपने विनाश को भी अपने साथ ही लिये आता है।

कुमारसंभव की पार्वती परिपूर्ण यौवन से झुकी हुयी चलने फिरने वाली लता के समान आकर शिव को साष्टांग प्रणाम करती हैं और कमलों के बीज से बनायी हुयी जप करने के लिए तैयार की गयी माला अपने लाल-लाल हाथों से महादेव को अर्पित करती हैं। पार्वती के अपूर्व सौन्दर्य से एकाएक भासमान हर्ष पर देवताने विश्वास नहीं किया। उन्होंने उस हर्ष को क्रोधपूर्वक वापस कर दिया। अपने ललित यौवन की सुंदरता को अपमानित समझकर पार्वती ने तपस्या के द्वारा अपने रूप को सफल करने की इच्छा थी। आभूषण और शृंगार को त्यागकर कठोर मौञ्जी मेखला के द्वारा अपने अंग में वल्कल वस्त्र बांधकर ध्यान के आसन पर विराजमान होकर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बसंत के सखा कामदेव को छोड़कर कष्ट को ही अपने प्रेम का सहायक बनाया ।[१] इसी प्रकार शकुंतला को भी एक दिन इसी यौवन सौन्दर्य की सारी ऐश्वर्य संपत्ति के साथ अपमानित होकर लौटना पड़ा था और उसने भी दिव्य आश्रम में मदन की मादकतामय ग्लानि को दुःख की आग में जलाकर मंगलमयी तपस्विनी के वेश में रहकर सार्थक प्रेम की प्रतीक्षा की थी ।

कुमारसंभव काव्य का कुमारजन्य रूप एक बड़े कार्य के योग्य भूमिका है । कामदेव छिपे हुये वाण चलाकर धैर्य का बाँध तोड़कर जो मिलन कराता है वह पुत्र जन्म के योग्य नहीं होता । वह मिलन परस्पर एक दूसरे की कामना करता है, पुत्र जन्म की नहीं । इसी कारण कवि ने कामदेव को जलाकर पार्वती से तपस्या करवाई और प्रवृत्ति की चंचलता की जगह ध्रुव निष्ठा की एकाग्रता, सौन्दर्य जनित मोह की जगह पर कल्याण की कमनीय कांति और वसंत विह्वल वन के स्थान पर आनंदमग्न सारे संसार को खड़ा किया है । तब कुमार के जन्म की सूचना हुयी है । कुमारजन्म क्या पदार्थ है, इस बात को स्पष्ट करने के लिए ही कवि ने कामदेव को देवकोप में भस्मकर अनाथ रति से विलाप करवाया है । शकुंतला में भी प्रथम अंक में कवि ने प्रिया के साथ दुष्यंत का व्यर्थ प्रेम और अंत के अंक में भरत की माता के साथ उनका सार्थक मिलन अंकित किया है । जिस प्रकार किसी श्लोक का एक चरण संपूर्ण मिलने के लिए दूसरे चरण की अपेक्षा करता है, उसी प्रकार दुष्यंत शकुंतला का प्रथम मिलन संपूर्णता प्राप्त करने के लिए एक दूसरे के मिलन की पूरी आकांक्षा रखता है । शकुंतला के अन्तिम अंक में उसकी तंपस्या का फल वर्तमान है । वह अंक नाटक की बाह्य रीति के अनुसार नहीं, किन्तु उसकी अपेक्षा विशेष आवश्यक नियम के पालन के लिए है ।

कुमारसंभव और शकुंतला का विषय एक है । दोनों काव्यों में कवि का उद्देश्य यह है कि मोह से जो कृतार्थ नहीं हुआ वह मंगल कर्म में सफल हो गया । जिस सौंदर्य को धर्म धारण किये है वही चिरस्थायी है । प्रेम का शांत संयत कल्याण-रूप ही श्रेष्ठ रूप है । वास्तविक शोभा बंधन में है, उच्छृंखलता में नहीं । उच्छृंखलता में शीघ्र ही सौन्दर्य विकृत हो जाता है । भारत के इस प्राचीन कवि ने प्रेम को ही प्रेम का चरम गौरव नहीं माना अपितु इसने घोषणा कर दी है कि मंगल ही प्रेम का परम लक्ष्य है । उनके मत से स्त्री पुरुष का प्रेम यदि निष्फल हो या वह अपने लिये

---

१. तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती ।
निनिन्दं रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥
इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ॥
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्चतादृशः ॥ (कुमारसंभव, ५/१-२)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो और उससे मंगल उत्पन्न न हो और यदि वह संसार में पुत्र, कन्या, अतिथि, पड़ोसी आदि में विचित्र सौभाग्य के रूप में व्याप्त न हो तो वह सुंदर और स्थायी नहीं है। एक ओर गृहधर्म का कल्याण बंधन और दूसरी ओर निर्लिप्त आत्मा का बंधन छुड़ाना, ये दोनों भारतवर्ष के महत्त्वपूर्ण भाव हैं। सांसारिक स्थिति में भारतवर्ष के साथ बहुत लोगों के बहुत से संबन्ध हैं। यह उनमें से किसी को छोड़ नहीं सकता। किन्तु तपस्या के आसन में भारतवर्ष अकेला है। उस समय इसका संबन्ध किसी से नहीं है।

कालिदास के काव्य में तपोवन में योगी और, भोगी गृहस्थ के भाव का अपूर्व मिलन है। कामदेव ने आकर इस अपूर्व संबन्ध को तोड़ने की चेष्टा की थी, इसी कारण कवि ने उस पर वज्र प्रहार किया। तदनन्तर कवि ने फिर तपस्या के द्वारा मंगलमय गृह के साथ अनासक्त तपोवन का सुपवित्र संबन्ध स्थापित किया। ऋषि के आश्रम पर कवि ने गृहस्थ के घर की नींव डाली है और स्त्री-पुरुष के संबन्ध को कामदेव के पाश से मुक्त कराकर तप से पवित्र निर्मल योगासन पर बिठाया है।

धर्मग्रन्थों में स्त्री-पुरुषों का जो नियमित सम्बन्ध कठिन अनुशासन के रूप में बताया गया है। कालिदास के काव्यों में वही सौंदर्य की सामग्री से संगठित हुआ है। वह सम्बन्ध सौन्दर्य श्री (शोभा), ह्री (लज्जा) और कल्याण की ज्योति से प्रकाशित है। उसका लक्ष्य गम्भीरता की ओर है और वह उदारता के कारण सारे संसार को आश्रय दे सकता है। वह त्याग से परिपूर्ण है, दुःख से चरितार्थ है और धर्म के द्वारा चिरस्थायी है। इस सौन्दर्य में स्त्रीपुरुष के मोहमय प्रेम का दुरंत दुर्निवार प्रलयकारी वेग अपने को संयत करके मंगल के महासमुद्र में मिल गया है। इसी से वह प्रेम उच्छृंखल प्रेम की अपेक्षा महान् और विस्मित करने वाला है।

कालिदास की काव्योपलब्धि की सबलता और दुर्बलता दोनों उनकी कविता की इसी विशेषता से उत्पन्न होती है। पौरस्त्य तथा पाश्चात्य दोनों सिद्धान्तों में यह माना गया है कि पूर्वानुभूत भावों का संस्मरण तथा शान्त अनुचित कविता का उपजीव्य है और कालिदास की कृतियों में यह तत्त्व प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होता है। उनकी प्रशंसा में रवीन्द्र का कथन है कि "हे अमर कवि कालिदास ! क्या तुम्हारा सुख-दुःख और हमेशा और आशा-नैराश्य के द्वन्द्व हमी लोगों की तरह नहीं थे ? क्या तुम्हारे समय में राजनीतिक षडयन्त्रों और गुप्त आघात-प्रतिघातों का चक्र हर समय नहीं चलता रहता था ? क्या तुम्हें कभी हम लोगों की तरह अपमान, अनादर, अविश्वास और अन्याय सहन नहीं करना पड़ा ? क्या तुम यथार्थ जीवन के क्रूर कठोर अभावों से पीड़ित नहीं रहे ? और क्या तुम्हें उस निर्मम पीड़ा के कारण निद्राहीन रातें नहीं बितानी पड़ी ? ऐसा संभव नहीं। तुम्हें भी जीवन की कठोर यथार्थता के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कटु अनुभव हुए होंगे। किन्तु यह सब होने पर भी उन सबके ऊपर तुम्हारा सौन्दर्य कमल आनन्द के सूर्य की ओर उन्मुख होकर निर्लिप्त, निर्मल रूप में खिला है। उसमें कहीं दुःख दैन्य और दुर्दिन के अनुभवों का कोई चिह्न नहीं है। जीवन के मंथन के फलस्वरूप जो अमृत उठा उसे तुम समग्र संसार को दान कर गये हो।[१]

कालिदास की काव्य साधना के पीछे एक उद्देश्य स्पष्ट रूप से वर्तमान रहा है, मानव की मूल्य-योजना में प्रेम को कर्तव्य से नियन्त्रित एवं मर्यादित रखना तथा जीवनकी सार्थकता के लिए तपस्या का आलम्बन करना। कालिदास ने भारत की धरती एवं प्रकृति के जो ललित चित्र अंकित किये हैं उनके अवलोकन या आस्वादन से हमारे भीतर, अपने देश एवं राष्ट्र के प्रति अनुराग-भावना उदित होती है। फलतः हमारे हृदय में ममत्व का भाव स्पन्दन करने लगता है। परिवार व्यवस्था के सुचारु सञ्चालन के लिये जिन भावों तथा विचारणाओं को भारतीय समाज महत्त्व देता आ रहा है वे कालिदास के काव्यों में सुन्दरता पूर्वक मुखरित हुए हैं। महर्षि कण्व को जो तृप्ति शकुन्तला को पतिगृह भेजकर मिली थी, वह प्रत्येक पिता के अनुभव की वस्तु है।[२] कालिदास सम्पूर्ण मानवता के कवि हैं। वस्तुतः भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों को वाणी प्रदान करने वाला महाकवि मानवमात्र का ही कवि हो सकता है। उसे किन्हीं क्षुद्र अथवा संकीर्ण प्राचीरों में बाधा नहीं जा सकता। जिन आदर्शों को व्यापक जीवन के सन्दर्भ में रखकर कवि ने विषयों को उपपादित किया है, वे आज भी मूल रूप में अपना महत्त्व अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

वस्तुतः कालिदास की सबसे बड़ी शक्ति एवं उपलब्धि यही है कि उन्होंने जीवन के लिए एक सुनिश्चित योजना की कल्पना की है। जिसमें मनुष्य के यावत् अभीप्सितों की सिद्धि की सम्यक् व्यवस्था है, किन्तु जिसमें प्रेयस् के लिए श्रेयस् की अवमानना नहीं की गई है, सुन्दर के लिए शिवं की कदर्थना नहीं की गई है। युग-युग का मानव मूलतः उसी संघर्ष से उलझता है और मङ्गल मार्ग का वरण कर ही अपने विकास की यात्रा में अग्रसर होता है। वस्तुतः लौकिक साधनाओं में प्राथमिकता का यही क्रम अङ्गीकार कर सभी काल का मनुष्य विश्व कल्याण की यह कामना करता आया है—

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।[३]

---

१. रवीन्द्रनाथ टैगोर, "प्राचीन साहित्य" पृष्ठ ३७।

२. अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥ (अभिज्ञानशाकुन्तल, ४/२२)

३. विक्रमोर्वशीयम्, ५/२५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास का लालित्य

(पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में)

डा० (श्रीमती) तृप्ति रानी जायसवाल*

प्राचीन भारतीय सौन्दर्य का जब विवेचन होने लगता है तब सौन्दर्य के विषय में वर्णित वैदिक साहित्य की ओर हमारा ध्यान जाता है। वैदिक साहित्य में सौन्दर्य वर्णन के लिए सुन्दर और सौन्दर्य शब्द का सीधा प्रयोग नहीं मिलता। परन्तु उसके अन्य पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग मिलता है। वे शब्द हैं–रुचिर, चारु, रूप, प्रिय, भद्र, चित्र, मधुर आदि। वेदों में प्रकृति के सौन्दर्य और उल्लास के अतिरिक्त ईश्वर में ज्ञानमय रूप की चर्चा मिलती है।

सौन्दर्य का सम्बन्ध मन की अन्त: एवं बाह्य दोनों ही स्थितियों से है। मनुष्य जो कुछ भी अपने चक्षुओं से देखता है, उसको देखने के बाद अनुभूति का विषय बनाता है। दूसरे कुछ ऐसे प्रतिमान हैं जिसके कारण वह व्यक्ति सौन्दर्यानुभूति करने लगता है। लालित्य सौन्दर्य का पर्याय होते हुए भी लालित्य की सीमा में सभी प्रकार के सौन्दर्य को नहीं लिया जा सकता, जिस तरह व्यक्ति सुख से उत्पन्न सभी प्रकार के आनन्द को लालित्य नहीं कहा जा सकता। आनन्द अनुभूति का सम्बन्ध सहृदय के चित्र से है। साहित्य का कार्य मनुष्य को मनुष्यत्व की उच्च भूमि पर पहुँचाना है। साहित्यकार का हृदय विश्व हृदय में अपनी भाव सत्ता को विलीन कर देता है। इस विलीनीकरण के लिए जहाँ सत्य और शिव तत्व उत्तरदायी हैं, वहीं सौन्दर्य का भी अत्यधिक योगदान है।

द्विवेदी जी की प्रेम एवं सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टि को समझने के लिए 'कालिदास की लालित्य योजना' का विवेचन करना आवश्यक है। कालिदास की रचनाओं में प्रेम और सौन्दर्य का विशद वर्णन मिलता है। कहना न होगा कि कालिदास की रचनाओं के आधार पर ही द्विवेदी जी अपने पात्रों एवं साहित्य में प्रेम एवं सौन्दर्य की सृष्टि कर सकने में सफल हुए हैं। "इतिहास में जो कुछ सौन्दर्य है उसने मनुष्य को पशु सुलभ धरातल से उठाकर देवत्व में प्रतिष्ठित करने की जितनी विधियों का

---

* विभागाध्यक्षा-हिन्दी, वसन्त कन्या महाविद्यालय कमच्छा, वाराणसी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संधान किया है उन सबको ललित, मोहन और सशक्त वाणी देने का काम कालिदास ने किया है।'' द्विवेदी जी के अनुसार वही सौन्दर्य का सच्चा उपासक है जो अपने आस-पास के समाज के सौन्दर्य की सृष्टि और अभिव्यक्ति करे। द्विवेदी जी इस बात पर जोर देते हैं कि सौन्दर्य या सुन्दर वस्तु अपने ही देश की नहीं है, अपितु अनेक लोगों के सम्पर्क में आने का प्रभाव है क्योंकि मनुष्य में सीखने की प्रवृत्ति होती है। वह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जिसके सम्पर्क में आता है, उससे कुछ न कुछ सीखता है और वह सब कुछ सुन्दरता के निर्माण में सहायक होता है। ''नाना आचार-विचारों और विश्वासों की मिलनभूमि होने के कारण इस देश की संस्कृति में अनेक प्रकार के वैचित्र्य आए। काव्य में, चित्र में, मूर्ति में, वास्तु में, नृत्य-गीत-वादन और नाटक आदि चाक्षुष कलाओं से नवीन बातों का समावेश होता गया और एक प्रकार की प्रच्छन्न गतिशीलता का प्रादुर्भाव हुआ। इस बहुविचित्र जन मण्डली के सर्वोत्तम को ललित रूप देना मर्म भेदिनी दृष्टि का परिचायक है। इसलिए वे सम्पूर्ण राष्ट्रीय योजना को ललित रूप देने में कृतकार्य हुए।'' (कालिदास की लालित्य योजना, पृ०९)। सौन्दर्य की परम्परा को निर्माण करने वाला मानवीय सौन्दर्य (लालित्य) का प्राण है। आदि काल से आधुनिक काल तक लालित्य साहित्य का प्रमुख बना है। आदिकाल में चन्दबरदायी ने पृथ्वीराज रासों के माध्यम से लालित्य के दर्शन कराए हैं। विद्यापति की नायिका का सौन्दर्य, नारीगत भावों, स्वभाव की ऋजुता आदि का भी लालित्यपरक विश्लेषण किया गया है। भक्तिकाल विशेष रूप से सगुण भक्ति धारा तो लालित्य का केन्द्र ही रही। रीतिकालीन कवियों की सौन्दर्य दृष्टि नायिका के अंगों उपांगों पर अधिक रही है। फिर भी नायिकाओं के हाव-भावों के माध्यम से एक विशिष्ट सौन्दर्य की सर्जना होती है जिसे लालित्य कहा जा सकता है। हिन्दी गद्य साहित्य की लगभग सभी विधाएँ लालित्य का केन्द्र हैं। आचार्य द्विवेदी का तो सम्पूर्ण साहित्य (उपन्यास, निबन्ध आदि) लालित्य का पर्याय ही कहा जा सकता है।

द्विवेदी जी ने सौन्दर्य को मानव द्वारा लालित होने के कारण उसे लालित्य कहा है। उनके द्वारा वर्णित सौन्दर्य के केन्द्र में सदैव मनुष्य ही रहा है। उन्होंने मनुष्य को देवताओं से भी श्रेष्ठ बताया। द्विवेदी जी न तो सौन्दर्य को व्यक्ति के भावों में तलाशते हैं और न ही वस्तु के प्राण तत्व में। वे व्यक्तिगत इच्छा को सर्वव्यापी, कल्याणकारी इच्छा के अनुकूल होना ही सौन्दर्य मानते हैं और जिस वस्तु में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समष्टिगत कल्याण को पूर्ण करने की क्षमता होती है, उसी वस्तु को वे सुन्दर मानते हैं। पंडितजी के अनुसार सौन्दर्य में गतिशीलता के तत्व होने के कारण विशेषताएँ समाहित होती रहती हैं। जिस प्रकार मनुष्य सदैव विकास करता रहता है, उसके साथ-साथ उसकी समष्टि इच्छाशक्ति भी विकसित होती रहती है, इसी के साथ-साथ सौन्दर्य का विकसित होना भी आवश्यक है क्योंकि सौन्दर्य भी स्थायी नहीं होता। सौन्दर्य को गतिशील मानना, द्विवेदी जी का सौन्दर्य के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि का ही परिचायक है।

कालिदास के सौन्दर्य की समीक्षा करते समय द्विवेदी जी की दृष्टि सदैव मानवीय गुणों पर ही रहती है। वे सौन्दर्य को बाह्य अलंकरण में नहीं ढूंढ़कर वास्तविक धरातल पर आन्तरिक गुणों में ही ढूंढ़ते हैं, जिन गुणों से चरित्र का निर्माण होता है तथा जिसको प्राप्त करने के लिए कालिदास को तपोवन की शरण लेनी पड़ती है। उनका सौन्दर्य तपस्या और त्याग से ही रस पाता है तथा दु:ख के विश्ववाद में ही प्रेम निखरता है।

आचार्य द्विवेदी जी मानव निर्मित अथवा अनुभूत सौन्दर्य को लालित्य की परम्परा में स्वीकार करते हैं। द्विवेदी जी के अनुसार "सौन्दर्य दो प्रकार का होता है–एक प्राकृतिक सौन्दर्य, दूसरा मानवीय इच्छा शक्ति का विलास है। दूसरा सौन्दर्य प्रथम द्वारा चालित होता है पर है मनुष्य के अन्तरतर की अपार इच्छाशक्ति को रूप देने का प्रयास ही। एक केवल अनुभूति देकर विरत हो जाता है, दूसरा अनुभूति से उत्पन्न होकर अनुभूति परम्परा का निर्माण करता है। भाषा में, मिथक में, धर्म में, काव्य में, मूर्ति में, चित्र में बहुधा अभिव्यक्त मानवीय इच्छाशक्ति का अनुपम विलास ही वह सौन्दर्य है" (कालिदास की लालित्य योजना, पृ० ९०)। कालिदास के महत्व को मुक्तभाव से स्वीकार करते हुए कहते हैं–"भारतीय धर्म, दर्शन, शिल्प और साधना में जो कुछ उदात्त है, जो कुछ दृप्त है, जो कुछ महनीय है और जो कुछ ललित और मोहन है उनका प्रयत्नपूर्वक सजाया-सँवारा रूप कालिदास का काव्य है। सुकुमारता के साथ सुशीलता का, मानसिक मृदुता के साथ चारित्रिक दृढ़ता का, अपार वैभव के साथ विपुल वैराग्य का, सौन्दर्य के साथ धर्म का ऐसा मणिकांचन योग संसार के साहित्य में विरल है। (कालिदास की लालित्य योजना ग्रन्थावली ८, पृ० १२५)।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास का सांस्कृतिक परिवेश

(भगवतशरण उपाध्याय का अधिगम)

डॉ० अर्चना अग्रवाल*

किसी कृति के प्रशस्त होने का निर्णय हम जितना उसकी काव्यकला से चमत्कृत होकर लेते हैं, उससे कहीं अधिक इस बात का ध्यान रखकर कि वह अपने समय, अपने समाज को प्रतिबिम्बित करने में कहां तक समर्थ है और यह भी कि मूलभूत मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में उसका योगदान कितना है, इनमें से पहली तो उस कृति को ठोस अनुभव से जोड़कर उसके कल्पनालोक को भी सत्यता का, प्रामाणिकता का आधार देती है और दूसरी है जो उसे देशकालजयी कर देती है, सार्विक बना देती है।

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय का अध्ययन कालिदास वाङ्मय की पड़ताल इन्हीं संदर्भों में करता है और इसी कारण वह महत्वपूर्ण हो जाता है। डॉ० उपाध्याय महाकवि की रचनाओं से उनके युग का संपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कलेवर हमारे सामने उपस्थित कर देते हैं और सिद्ध कर देते हैं कि क्यों कालिदास विश्वकवियों की प्रथम पंक्ति में विराजते हैं, स्वयं भगवतशरण जी के शब्दों में "कालिदास के ग्रंथों में राजनीतिक, सामाजिक, कला-संबंधी, आर्थिक आदि की इतनी संपदा भरी पड़ी है कि उनको निष्कर्षतः लिखने में ग्रंथों की परंपरा बन सकती है, अपने और प्राचीन काल का परंपरागत जीवन उनमें इतना भरा है कि कवि अकेला भारतीय संस्कृति का कोष बन गया है,"[१]..."जैसे फिल्म दिखाने वाला आपरेटर प्रकाश में पट पर लगातार चित्र फेंकता चला जाता है वैसे ही एक के बाद एक भारतीय संस्कृति के चित्र कालिदास भी अपनी प्रतिभा के प्रकाश में हमारे सामने फेंकते चले जाते हैं और हम ठगे-से उसे देखते रह जाते हैं।[२]

डॉ० उपाध्याय जितने बड़े पुरातत्वविद् और कला मर्मज्ञ थे, उससे कहीं बढ़कर वे संस्कृत के ज्ञाता और साहित्यानुरागी भी थे। कालिदास तो उनके रग-रग में बसे हुए थे। कालिदास और उनकी कृतियों के सांगोपांग अध्ययन में उनका

* प्रवक्ता–संस्कृत-आर्य महिला महाविद्यालय, वाराणसी

१. कालिदास और उनका युग पृ० १२२।

२. कालिदास जीवन और साहित्य पृ० १।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संपूर्ण जीवन न्योछावर था। जिसका, स्वयं उन्हीं के शब्दों में "मैग्नम ओपस" (magnum opus) उनका ग्रंथ 'इंडिया इन कालिदास' है जिसका हिंदी रूपांतर 'कालिदास का भारत' जो दो भागों में है, भी प्रसिद्ध ही है, किंतु महाकवि के प्रति उनकी श्रद्धा, उनकी अनन्य प्रीति उनकी लेखनी को इतना लिखकर भी विश्रांति नहीं लेने देती, बल्कि कुछ और भी कहने, और तरीकों से कहने के लिए प्रेरित करती है जिसका प्रस्फुटन कालिदास विषयक उनके छह अन्य ग्रंथों में भी हुआ है। ये ग्रंथ हैं : १. कालिदास, २. कालिदास और उनका युग, ३. कालिदास के नाटक, ४. कालिदास के सुभाषित, ५. कालिदास जीवन और साहित्य और ६. कालिदासं नमामि।

इन ग्रंथो में डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने कालिदास को विभिन्न कोणों से देखने, पकड़ने की कोशिश की है, पहले वे उनके चतुर्दिक परिवेश को सिरजने का प्रयत्न करते हैं, उनकी कृतियों से ही टुकड़े चुनकर वे उन मार्गों का निर्माण करते हैं जिनपर महाकवि चला होगा, वह प्राकार खड़ा करते हैं जिसकी परिधि में महाकवि का सुखमय जीवन बीता होगा। उन पर्वतों को चिह्नित करते हैं जिनके उत्तुंग शिखरों पर आरोहण कर महाकवि ने जगत् को निरपेक्ष भाव से देखा होगा और उन नदियों को भी जिनकी सिकता पर भ्रमण करते हुए, शीतल वायु का सेवन करते हुए वह अपने लेखकीय श्रम को दूर करता, रचनात्मक ऊर्जा का पुनर्संघनन करता रहा होगा। संक्षेप में, डॉ० उपाध्याय ने उस भारत का भौगोलिक खाका खींचा है जिसमें महाकवि के भौतिक शरीर ने साँस ली होगी, जीवन यापन किया होगा।

महाकवि के देश काल के संबंध में आज भी निश्चयात्मक प्रत्यय नहीं हो पाया है। डॉ० भगवतशरण भी ऊहापोह के इस जाल से बच नहीं सके हैं, और विभिन्न प्रमाणों के आधार पर वे इस विषय पर पर्याप्त विचार विमर्श करते हैं, यद्यपि विमर्श आरंभ करने के पूर्व ही वे भारतीय साहित्यिक परंपरा की इस मूल अवधारणा को स्वीकार करते हैं कि महान् प्रतिभाएँ सर्वत्र व्याप्त होती हैं, सार्वकालिक ! स्वयं डॉ० उपाध्याय के शब्दों में–"महान् साहित्यकार प्रकाश की भाँति स्वच्छंद, वायु की भाँति स्थान विशेष का नहीं होता, सर्वत्र का होता है, सब काल और देश उसकी सीमा नहीं बाँध सकते, इसी से कालिदास ने अपने ग्रंथों में कहीं अपना नाम नहीं लिखा, अपने स्थान का नाम नहीं लिखा, अपने कार्यकाल का उल्लेख नहीं किया, काल निरवधि था, पृथ्वी विपुल थी।"[१]

---

१. कालिदास और उनका युग पृ. ४०।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनेकानेक अंत: बाह्य प्रमाणों के आधार पर अन्तत: वे इस निर्णय पर पहुँचते हैं–"तब हम प्रबल प्रमाण के अभाव में साधारणत: यह कह सकते हैं कि कालिदास जन्म से कश्मीरी थे पर रहे मालवा में। कम से कम उस प्रवास में उनका दीर्घ काल बीता था।"

महाकवि के काल को लेकर उनकी ऊहा और गंभीर है, जिसका निष्कर्ष इन पंक्तियों में व्यक्त होता है–"जिस शान्त और सुखी तथा समृद्ध वातावरण का महाकवि के ग्रंथों में वर्णन हुआ है वह व्यापार आदि से संपन्न उदारचेता नृपतियों से सुशासित राष्ट्र में ही संभव था। वह वातावरण उस काल गुप्त नृपति ही प्रस्तुत कर सकते थे। कालिदास की परंपरा उन्हें किसी विक्रमादित्य का समकालीन बताती है। प्रथम शती ई.पू. में कोई विशिष्ट विक्रमादित्य नहीं मिलता, स्कंदगुप्त विक्रमादित्य बहुत पीछे हैं, इससे तीसरी सदी ईसवी के बाद और स्कंदगुप्त के पहले चूंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही विक्रमादित्य हैं, महाकवि को ४००ई. के लगभग उसी का समकालीन होना चाहिए।"

भगवतशरण ने कालिदास के समय की जलवायु, वनस्पति और जंतुओं के पहचान का भी प्रयत्न किया है। उनके अध्ययन की परिधि में पौधे और लताएँ, जलचर और विहग भी आ जाते हैं, नगर, प्रांत और जनपद तब कौन-कौन से थे और उनका स्वरूप क्या था, उनकी राजनीतिक व्यवस्था किस प्रकार की थी, शासन कितना सुचारु था, सेना का गठन और युद्ध का संचालन किस प्रकार से होता था–यह सब विस्तारपूर्वक डॉ० उपाध्याय ने महाकवि की सातों रचनाओं से निष्कर्षित कर लिया है।

तत्कालीन सामाजिक जीवन, व्यवहार, प्रथाएँ, खान-पान, पारिवारिक संबंध, मनोरंजन, वेश और शृंगार, नैतिक मूल्य प्रकृष्टत: कालिदास की रचनाओं में प्रतिबिंबित हुए हैं, किंतु उन्हें शुद्ध रूप से ग्रहण कर पाना साधारण पाठक के लिए संभव नहीं या कहें कि रसिक काव्यानंद में ऐसा निमग्न हो जाता है कि अन्य बातों पर ध्यान ही नहीं जा पाता। भगवतशरण ने इन सभी विषयों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर दिया है।

कालिदास के समय ललित कलाएँ किस स्थिति में थीं, साहित्य के साथ उनका संबंध क्या था—ये सभी कुछ महाकवि की लेखनी के आश्रय से कीलांकित हो गया है और डॉ० उपाध्याय आज हमारे सामने उसे प्रकट करते हैं। स्वयं डॉ० उपाध्याय के शब्दों में–"कालिदास, जैसा कि उनकी रचनाओं से प्रत्यक्ष होता है, बड़ी योग्यताओं वाले व्यक्ति थे और उनमें सौंदर्य भावना की असामान्य मात्रा थी। उन्होंने

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ललित कलाओं की अनेक शाखाओं का सविस्तार वर्णन किया है। कविता तथा नाटक, संगीत तथा नृत्य, चित्रकला, भास्कर्य और मृण्मूर्तिकरण तथा स्थापत्य–विविध विवरणयुक्त सबका वर्णन किया गया...''

तत्कालीन आर्थिक जीवन-प्रभूत व्यापार और अतुल वैभव के साथ समृद्ध संपन्न स्थिति का चित्रण महाकवि की रचनाओं में खूब हुआ है, यद्यपि इसमें सर्वसाधारण की अवस्था का चित्रण नहीं है, ऐसा भगवतशरण भी मानते हैं क्योंकि महाकवि की रचनाओं का विषय धनाढ्य, विशेष रूप से राजन्य वर्ग ही रहा है, जिसमें जनसाधारण की आर्थिक स्थिति का चित्र खींचने का कोई विशेष अवकाश नहीं है, फिर भी अवसर प्राप्त होने पर तत्काल महाकवि इस संबंध में तत्पर दिखते हैं, जैसा कि 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के षष्ठ अंक के प्रवेशक से स्पष्ट लक्षित होता है, जहाँ निर्धन धीवर और अल्पवेतनभोगी राजकर्मचारियों की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, ऐसे ही संकेतों से भगवतशरण ने संपूर्ण भू-भाग के आर्थिक जीवन का खाका हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया है, जिसमें कृषि, पशुपालन, अन्य व्यवसाय, सामुद्रिक और वन संपदाओं से आय, आयात, निर्यात, देशीय वाणिज्य, मुद्राएँ, तौल और पैमाने, शिल्पिसंघ, विज्ञापन, कोशचालन (बैंकिंग) और निक्षेप और साथ ही जनसंख्या भी सम्मिलित है।

शिक्षा, अध्ययन के विषय, विद्यार्थी जीवन, शुल्क, विद्यार्थी की दीक्षा, शिक्षक, वेतन, लेखन कार्य आदि विषयों पर भी भगवतशरण ने अपनी सम्मति प्रस्तुत की है, जिन पर संभवत: किसी अन्य व्याख्याकार की दृष्टि नहीं गई है।

उस समय के धर्म, वैदिक और पौराणिक देवगण, देवियाँ, त्रिमूर्ति का स्वरूप ब्रह्मज्ञान और बहुदेवत्ववाद, एकेश्वरवाद और विश्वात्मा, अद्वैतवाद, प्रतिमापूजन आदि की विस्तृत चर्चा भगवतशरण ने महाकवि के संदर्भों से की है। इसी सिलसिले में उन्होंने षोडश संस्कारों और प्रचलित दार्शनिक सिद्धांतों को भी समेटा है।

गंभीर अन्वेषक की दृष्टि से कालिदास की रचनाओं की पड़ताल कर उससे उस युग के सांगोपांग पुनर्निर्माण की सभी संभव सामग्री निष्कर्षित कर लेने वाले डॉ० भगवतशरण उपाध्याय शुष्क अध्येता ही नहीं वरन् सहृदय, रसिक भावक भी हैं, महाकवि के एक-एक श्लोकों का उन्होंने मार्मिकता के साथ आस्वादन किया है और उनमें छिपी महाकवि की सूक्ष्म संवेदनशीलता को भी संवेदित किया है। निदर्शनस्वरूप 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की उनके द्वारा की गई समीक्षा देखना पर्याप्त होगा।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास के वाङ्मय में मयूर

(व्याख्याकार डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री)

डॉ० अर्चना कुमारी दुबे*

डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री की गणना देश के वरिष्ठतम और मूर्धन्य विद्वानों में की जाती है। उन्हें 'साहित्य वाचस्पति' एवं राष्ट्रपति द्वारा गम्भीर शास्त्रीय वैदुष्य के लिए सम्मानित किया गया। वे ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स की वैदिक शाखा के अध्यक्ष रहे हैं तथा आज भी युवा के समान सरस्वती-सेवा में रत हैं। इनके अनुसार कालिदास के वाङ्मय में मयूर का वर्णन इस प्रकार किया गया है। कालिदास के वाङ्मय में पञ्चमकार का विशेष स्थान है। पञ्चमकार के अन्तर्गत मृग-मयूर-मधुकर-मराल-मीन आते हैं, इनमें हमारा राष्ट्रीय पक्षी मयूर है।

मयूर पालने की प्रथा कालिदास के समय बहुत लोकप्रिय थी। पालित मयूर को क्रीडामयूर कहते थे। अन्य सामान्य मयूर वन-बर्हिन् कहलाते थे। पालतू मयूरों को बैठने और रात्रिशयन के लिये दो-तीन लकड़ियाँ जोड़कर छोटा-सा ऊँचा मञ्च बनाया जाता था। जिसे वासयष्टि कहते थे। कालिदास ने इस वासयष्टि का उल्लेख मेघदूत में भी किया है–

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढ़वंशप्रकाशैः।
तालैः शिञ्जद्वलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः[१] ॥

मेघदूत का यक्ष मेघ को अपने घर का परिचय देते हुए कहता है–यह मेरे गृह मयूर की वासयष्टि है। दिन में मेरी पत्नी बजती हुई चूड़ियों के साथ हाथों से ताल दे देकर तुम्हारे प्यारे मित्र मयूर (नीलकण्ठ) को नचाया करती है। दिन बीतने पर वह मयूर वासयष्टि पर बसेरा-लेता है।

डॉ० अग्निहोत्री ने इस वासयष्टि का वर्णन करते हुए कहा है–यह वर्णन अलकापुरी वासी धनिक यक्ष के घर का है। सामान्य परिवारों की वासयष्टि मामूली लकड़ी की होती होगी। किन्तु दो बातें धनी और निर्धन दोनों कोटि के परिवारों में

---

* प्रवक्ता संस्कृत-वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

१. मेघदूत-उत्तरमेघ-१६.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामान्य थी । उपर्युक्त श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियों में उसका उल्लेख है । "तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ।" ये शब्द कवि की सहज ममता के परिचायक हैं । अभिज्ञान शाकुन्तलम् में 'परित्यक्त-नर्तना मयूराः' में प्रकृति के अनन्य सहचर की संवेदना साकार हुई है[१] ।

मयूर के प्रति सौहार्द, आत्मीयता, पारिवारिकता का भाव पति एवं पत्नी (यक्ष एवं यक्षिणी) दोनों के मन में है । मयूर के प्रति कालिदास का यह आन्तरिक लगाव ही श्लोक में शब्दायित हुआ है और इस सौहार्द की परिणति देखने को मिलती है–पुरुरवा और उर्वशी के पुत्र आयुष के व्यवहार में । बादलों की ओर देखते हुए छितराये हुए कलंगी वाले मोर को देखकर[२] पुरुरवा उससे अपनी प्रिया की पहचान बताता है । उसका मुख चन्द्रमा सा और चाल हंस जैसी है[३] । जो चिह्न मैं तुम्हें बता रहा हूं उन्हें देखते ही तुम उसे पहचान लोगे । हे उजले कोनों की आंखों वाले मोर ! क्या तुमने मेरी वह प्रियतमा देखी है जिसकी बड़ी-बड़ी आंखें हैं, जिसकी सुन्दरता देखते ही बनती है अपनी उस प्रियतमा के लिए मैं व्याकुल हूं–

नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन् वनिता त्वया
दीर्घापाङ्गा सितापाङ्गा दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत्[४] ।।

च्यवन के आश्रम में निक्षेपरूप में रखा हुआ आयुष बढ़कर युवा बन जाता है तो ऋषि तापसी के साथ उसे पुरुरवा के पास भेजते हैं । परन्तु आयुष आश्रम को लौट जाना चाहता है और जब यह संभव नहीं होता तो विदा लेती हुई तापसी से प्रार्थना करता है–

यः सुप्तवान् मदङ्के शिखण्ड-कण्डूयनोपलब्धसुखः ।
तं मे जात कलापं प्रेषय मणिकण्टकं शिखिनम् ।।[५]

आज जा रही हो तो कृपा कर मेरा मणिकण्टक मोर मेरे पास भेज देना । कितना छोटा था जब से मैंने उसे पाला है । मैं धीरे-धीरे उसकी कलंगी के पास खुजलाया करता था तो वह आनन्द से मेरी गोद में ही सो जाता था । अब तो उसके पंख निकल आये हैं । कैसी थी यह संस्कृति जिसमें चक्रवर्ती के सिंहासन पर बैठने जा रहा युवराज भी नाजुक समय में भी यदि किसी पर हृदय की पूरी ममता उड़ेलना चाहता है तो उसका निरीह सहचर-मयूर है । यह सहचर आयुष का है, भरत का है, यक्ष का है और सच कहें तो कालिदास का है ।

●

---

१. अभि. शा. ४/१२ २. विक्रमोर्वशीयम् ४/१८
३. वही ४/२० ४. वही ४/२१
५. विक्रमोर्वशीयम्-५/१३ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास की शिवदृष्टि एवं शाप

(पं० विद्यानिवास मिश्र के अनुसार)

ज्योति सिंह, संजय कुमार*

कविवरेण्य कालिदास सरस्वती के अमरपुत्र तथा सुरभारती के सनातन श्रृंगार हैं। महाकवि के कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् जैसी श्रेष्ठ कृतियों में देवाधिदेव महादेव, भगवान शिव का जो वर्णन किया है उससे प्रभावित होकर पं० विद्यानिवास मिश्र ने अपने **''कालिदास से साक्षात्कार''** नामक लेख में **'कालिदास की शिव-दृष्टि'** का विशद विवेचन किया है। प्राचीन और नवीन भारतीय कवियों में कालिदास को जो मूर्धन्य स्थान प्राप्त है, उसका कारण उनकी समग्र शिव-दृष्टि ही है।

शिव-दृष्टि और शिवमयता में कोई अन्तर नहीं है, क्यों कि विना शिव हुए शिवदृष्टि प्राप्त नहीं होती और विना शिव हुए शिव भी प्राप्त नहीं होते। शिव न तो पूर्णरूपेण आध्यात्मिक हैं न भौतिक। शिव की सत्ता है–इसका अनुभव प्रतिक्षण सृष्टि के प्रत्येक अणु को हो रहा है। सृष्टि का प्रत्येक कण चाहे वह जड़ हो या चेतन निरन्तर शिव-स्थिति को प्राप्त करने के लिए सचेष्ट है। यह चेष्टा ही कालिदास के साहित्य का विषय है। कालिदास की शिव-दृष्टि का तात्पर्य है ऐसी दृष्टि जो वर्जन से परे हो, जो जीवन को विधिरूप में स्वीकार करती हो, इसलिए शिव शम के नहीं समग्रता के प्रतीक हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के द्वितीयांक में कालिदास ने यह सिद्ध कर दिया है कि वास्तविक रूप से शिव का नेत्र ज्ञान के तेज का ही प्रतीक है। ज्ञान के तेज के विना अविवेक को निस्तेज नहीं किया जा सकता।–**शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः'**। इनकी शिव-दृष्टि निरभिमानता से परिपूर्ण है। कहीं भी यह प्रतिभासित नहीं होता है कि वे इसके के प्रति सचेष्ट हैं। उनकी शिव-दृष्टि अपूर्व चित्रित प्रतीत होती है। जिसका कारण प्रयत्न का अभाव नहीं प्रयत्न का अतिशय है। इन्होंने अपनी शिव-दृष्टि को भागवत धर्म के साथ जोड़ा है। एक तरफ वे श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञानकर्म समुच्चय से प्रभावित हैं, तो दूसरी ओर शैवागम के सामरस्यवाद से अभिभूत हैं। अतः सामरस्य, समग्रता और

---

१. शोत्र छात्रा-शोधछात्र संस्कृत विभाग काशी हिन्दूविश्वविद्यालय।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मस्वातन्त्र्य ही इनकी शिव-दृष्टि का परम रहस्य है ।

कालिदास की कृतियों में शाप एक विचारपरक बिन्दु है । उसी के द्वारा ही मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास पाता है । यक्ष और शकुन्तला इसके प्रमाण हैं, जिन्हें शाप मिलना ही वरदान बन गया है । जैसा कि विद्यानिवास मिश्र जी का मानना है 'मेघदूत' काव्य में शाप के माध्यम से ही प्यार की परीक्षा है और शाप अवसर देता है ।'' कालिदास कुबेर से यक्ष को शाप दिलाकर उसके प्रेम को और प्रगाढ़ बना देते हैं । उसका प्रेम दाम्पत्य का सच्चा साथी बन जाता है । वह प्रेम में सुध-बुध खो देता है और बादल से अपनी प्रेयसी को सन्देश भेजने लगता है । यदि उसे कुबेर शाप नहीं देते तो वह प्रेम को समझ नहीं पाता और न ही प्रेम यज्ञ में तप पाता । शकुन्तला के जीवन में आया चरमोत्कर्ष शाप से ही प्राप्त हुआ है । कवि ने दुर्वासा से शाप दिलाकर ही उसके जीवन को सफल बना दिया है । उसका चरित्र पतित से पावन बन जाता है ।

रघुवंश में दिलीप ने इन्द्र की सहायता से लौटते समय रास्ते में बैठी कामधेनु का अभिवादन नहीं किया । फलस्वरूप कामधेनु शाप देती है–बिना मेरी सन्तति की सेवा किये तुम्हें पुत्र सुख नहीं मिलेगा । यहाँ कवि ने दिलीप को कामधेनु की सन्तति की सेवा का अवसर प्रदान करके शाप से मुक्ति का उपाय सुझा दिया है । 'कुमारसम्भवम्' में भी कुमारकार्तिकेय को जन्म देकर तारकासुर के वध के विधान के मूल में शाप ही है । कालिदास की कृतियों में शाप प्रक्रिया सत्य में निहित है । सत्य बहुत कठोर होता है और कठोर होने के साथ-साथ अभितप्त भी होता है । अभितप्त होने पर पुनः मृदु बन जाता है । कालिदास के काव्य में जो मृदुता आयी है, वह कठोर सत्य के द्रवण से आयी है । शाप कार्य का दुष्परिणाम नहीं सुपरिणाम है । शाप दुर्भाग्य नहीं आशीर्वाद है । विक्रमोर्वशीय नाटक में भरतमुनि के शाप से ही उर्वशी मृत्युलोक पर आती है और पुरुरवा को पुत्र दर्शन कराकर स्वयं इन्द्रपुरी चली जाती है । उर्वशी का गन्धमादन उपवन में प्रवेश कर लता बनते ही पुरुरवा के एक निष्ठ प्रेम का परिचय प्राप्त होता है ।

कालिदास सत्य को पाने के लिए तप का अनुभव और तप के प्रमाद के कारण शाप के दुःख का अनुभव और शाप से मुक्ति के लिए पुनः तपोवन की शान्ति का अनुभव करते हैं । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास का शाप किसी न किसी रूप में सत्य की पहचान है, ईश्वरीय कृपा एवं वरदान है ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शाकुन्तलः प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में

वागीशराज शुक्ल*

निखिल संस्कृत वाङ्मय में कालिदास का वाग्वैदग्ध्य और रसमाधुरी देश तथा काल की समस्त सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए मानवमात्र को अपने आकर्षण पाश में आबद्ध कर लेता है। महाकवि की सात कृतियां विश्व साहित्य को देदीप्यमान कर रही हैं। मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञान-शाकुन्तल—ये तीन नाटक, कुमार-सम्भव और रघुवंश—ये दो महाकाव्य, मेघदूत जैसा अतीव सुन्दर गीतिकाव्य और वर्णन-परक षड्ऋतुओं का सजीव चित्रण करने वाला काव्य ऋतुसंहार महाकवि की प्रतिभा के निदर्शन हैं।

जब तक काव्यावगाहन की सम्यक् दिशा निर्धारित नहीं होती, तब तक तद्विषयक अध्ययन संदेह से विरत नहीं हो पाता। यहाँ तक कि गुरु भी अपने संदेह का निवारण सम्यक् दिशासूचिका टीकाओं से करते आये हैं "टीका गुरूणां गुरुः"। टीका का शाब्दिक अर्थ होता है–"टीक्यते गम्यते ग्रन्थार्थोऽनया" (वा.शि.आ.पृ. ४१३)।

समग्र विश्व साहित्य में सर्वाधिक टीकाएँ यदि किसी कवि की रचनाओं पर की गई हैं तो वे हैं कविकुलगुरु कालिदास। न केवल भारतीय भाषाएँ अपितु विश्व भाषाएँ भी महाकवि सी सूक्ष्मेक्षिका का निदर्शन कराती हैं। चाहें प्राचीन टीकाकार हो किंवा अर्वाचीन, सर्वत्र महाकवि के विचारों की बहुविध दार्शनिकता परिलक्षित होती आयी है। जिस प्रकार महाकवि के प्राचीन टीकाकारों के पुरोधा मल्लिनाथ स्वीकार किये जाते हैं, उसी प्रकार अर्वाचीन सम्पादकों की दृष्टि में समग्र कालिदास साहित्य के सम्पादक, आधुनिक कालिदास कहे जाने वाले विद्वद्वरेण्य प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी जी का नाम आता है।

काव्य-सौन्दर्य-दृष्ट्या, रसपरिपाक-दृष्ट्या, छन्दो-विधान-दृष्ट्या किंवा सकल-रचना-कौशल दृष्ट्या, महाकवि की समस्त कृतियों का सर्वेक्षण, परीक्षण अथवा निरीक्षण करना हो तो आधुनिक संस्कृत काल में सर्वप्रथम आचार्य द्विवेदी जी द्वारा सूक्ष्म दृष्ट्या सम्पादित कालिदास ग्रन्थावली का आवगाहन करना ही होगा, जिसमें

---

* शोधछात्र संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्वद्वरेण्य ने समस्त कालिदासीय ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन किया है । जिस शाकुन्तल को विश्व संस्कृत समवाय शिरोधार्य कर नृत्य करता है, जर्मन कवि गेटे जैसा व्यक्तित्व कहता है–''सौन्दर्यं यदि वाञ्छसिप्रियसखे ! शाकुन्तलं सेव्यताम्'' । उसी शाकुन्तल की सर्वोत्कृष्टता पर आचार्य द्विवेदी प्रश्नचिह्न अंकित करते हैं । उनका कथन है–'शाकुन्तल में ऐसी कौन सी विशेषता है जो उसका महिमा मण्डन किया जाता रहा है । यदि नाटक दृष्ट्या देखा जाय तो इसमें सात्विक अभिनय अधिक है, जब कि प्रभावोत्पादकता के लिए आङ्गिक अभिनय का अधिक्य होना चाहिए, जैसा कि मृच्छकटिक में है ।'' लोक पक्ष का उदाहरण देते हुए आचार्य द्विवेदी कहते हैं है कि लोकपक्ष दृष्ट्या शाकुन्तल व्यक्तिपरक ही अधिक दृष्टिगोचर होता है एवं व्यक्ति पक्ष में भी उन्माद और स्थूल भुक्ति ही इसमें प्रमुख दिखाई देते हैं । शाकुन्तल में अतिमानवतत्त्व सक्रिय है और लगता है कि मानव अन्तरिक्ष की प्रभातरलतारिकाओं से आँख मिचौली करने में स्वयं को बड़भागी मान रहा है । नाट्य कर्म की दृष्टि से भी ऐसा लगता है कि शाकुन्तल उक्ति प्रमुख कोई तार्किक काव्य है, जिसमें हृदय की अनुभूतियों को हृदय पर न छोड़कर बुद्धि के धरातल पर प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है; जिससे और भी ऐसे अनेक पक्ष सामने आते हैं जिनसे शाकुन्तल की सर्वोत्कृष्टता के सामने प्रश्न चिह्न अंकित होता है ।

आचार्य द्विवेदी ने शाकुन्तल पर प्रश्न उपस्थापित किया, इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्हें महाकवि की रचनाओं क़ी सर्वोत्कृष्टता अभिप्रेत नहीं, अपितु उनका उद्देश्य तो सर्वथोचित समाधान देना है जो उनकी अपूर्व रचना–''कालिदासः मानवशिल्पी महाकविः'' नामक पुस्तक में उद्धृत है ।

शाकुन्तल के सामान्य अध्ययन से यह दृष्टिगोचर होता है कि निसर्ग कन्या शकुन्तला भ्रातृविहीना थी, लेकिन आचार्य द्विवेदी की दृष्टि में शकुन्तला का सगा भाई भी था । यूँ तो शकुन्तला अपने माता-पिता की अकेली संतान है किन्तु इसे एक अपने जैसा ही भाई भी प्राप्त है । जिसका नाम है दीर्घापाङ्ग । उसकी आँखे बड़ी हैं । वह दुष्यन्त पर विश्वास नहीं करता, क्योंकि वह दूरदर्शी है । शकुन्तला की साड़ी का छोर पकड़कर वह उसे दुष्यन्त के यहाँ जाने से रोकता है; वह मृग है । शकुन्तला का सगा भाई मृग दुष्यन्त के हाथ में रखे दोने का पानी नहीं पीता, आचार्य द्विवेदी की यह कल्पना अक्षरशः सत्य है, क्योंकि सद्योजात शकुन्तला को उसके माता-पिता ने छोड़ दिया था और वही विडम्बना दीर्घापाङ्ग की भी थी ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास और आधुनिक कवि नागार्जुन

डा० सुमन जैन*

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप के जमींदारी, व्यापारियों ने जैसे-जैसे एशिया में अपने पांव जमाये, वैसे-वैसे विश्व इतिहास में नई व्याख्यायें सामने आने लगीं। प्रो० रामविलास शर्मा लिखते हैं–"व्याख्या यह थी कि एशिया के समाज हजारों साल से ठहराव की हालत में हैं, यहाँ जो नई गतिशीलता पैदा हुई है, वह विदेशी राज कायम होने का परिणाम है। वे भारत से कपड़ा खरीदकर यूरोप मे बेचते थे। नतीजा यह कि भारतीय माल के बदले उन्हें यहाँ के व्यापारियों को सोना-चांदी देना पड़ता था। भारत में जब उन्होंने राज कायम किया, तब वे यह सोना-चांदी लूटकर विलायत ले गये। इसी पूंजी के बल पर उन्होंने अपने यहां औद्योगिक क्रांति की। मशीन उत्पादन के बावजूद खुले व्यापार में भारतीय कपड़े के आयात को रोका।" भारत के किसी भाषा साहित्य का अध्ययन करते हुए आधुनिक संदर्भों में हमें यह बात याद रखनी चाहिए। साहित्य में मध्य काल, आधुनिक काल जैसे शब्द और समय में ये बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं। 'आधुनिकता की शुरुआत अंग्रेजी राज कायम होने के साथ हुई। अंग्रेजों के यहां आधुनिकता सोलहवीं शताब्दी या उससे पहले प्रारम्भ हो गयी थी। भारत में लोग आधुनिकता का सम्बन्ध मशीनी उत्पादन से जोड़ लेते हैं। वर्तमान भारत में जो दृष्टिगत है, नागार्जुन उसके साहित्य के रचयिता हैं। उनकी रचनाओं में भारत की विसंगतियाँ, विडम्बना, मूल्य, आस्था, परम्परा, संस्कृति, इतिहास, लोक चेतना, लोकतत्व पूरी तरह से समाहित है। वर्तमान की विभिन्न संगति और विसंगति, जैसे राजनीति, व्यंग्य, विद्रूपताओं के वर्णन के साथ ही उनकी रचनाओं में सौंदर्य का पक्ष भी पूरी तरह जीवन्त है।

नागार्जुन के काव्य का एक बड़ा भाग अनूठे प्रकृति चित्रों से भरा पड़ा हुआ है। वर्षा और बादलों पर इतनी अधिक कविताएँ निराला के बाद नागार्जुन ने लिखी। एक और यात्री के रूप में उन्होंने 'अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है, तो दूसरी तरफ 'धिन-धिन धा धमक-धमक मेघ बजे' का गीत पूरी मस्ती

---

* वरिष्ठ प्रवक्ता–हिन्दी, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के साथ गाया है । वस्तुत: वर्षागमन के अवसर पर ऋतु-संधि का सहज बोध नागार्जुन को किसान की तरह होता है और उनकी कविता में पूर्व संचित संस्कार सहजता के साथ अंकुरित होते हैं । वर्षा का प्रसंग आते ही उनकी जुगनुओं पर लिखी हुई कविता याद आ जाती है **''गीली भादों, रैन अमावस कैसे ये नीलम उजास के/अच्छत छींट रहे जंगल में ।''** नागार्जुन को दोहराते हुए हमारी दृष्टिं उनकी मातृभाषा मैथिल पर भी जाती है और तभी बरबस मन बंध जाता है विद्यापति की पदावली के साथ । बाबा नागार्जुन ठेठ मैथिल में विद्यापति को उजागर कर देते हैं ।

''श्याम घटा, सित बिजुरी देह
फाँक इजो तक तिमिरक धार
निविड़ विपन अति पातर धार
दारिद उर लछमी जनु हार
लोहक चाररि चानिन तार ।''

बाबा नागार्जुन के प्रकृति, सौन्दर्य, रूप की पूंजी में, यदि निरीक्षण करें तो स्पष्ट पता चलेगा कि केन्द्र में हैं संस्कृत के महाकवि कालिदास । नागार्जुन की कविता 'बादल को घिरते देखा है' में महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' अपना पूरा अधिकार रखता है–**'अमल धवल गिरि के शिखरों पर/बादल को घिरते देखा है/कहां गया धनपति कुबेर वह/कहां गई उसकी वह अलका । नहीं ठिकाना कालिदास के/व्योम प्रवाही गंगाजल का/ढूंढा बहुत परंतु लगा क्या मेघदूत का पता कहीं/x x x x नभचुंभी कैलाश शीर्ष पर महामेघ को झंझानिल से/गरज-गरज भिड़ते देखा है/बादल को घिरते देखा है ।''** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं–''मेघदूत कालिदास का अत्यधिक लोकप्रिय काव्य है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह बहुत सधे हाथों की रचना है ।'' अपने कर्तव्य से च्युत होने पर अपने स्वामी कुबेर द्वारा अभिशप्त यक्ष को एक वर्ष के लिए देश निकाला मिलता है । वह रामगिरि पर्वत पर आश्रय लेता है । वर्ष के कुछ महीने तो वह ऐसे-तैसे काट लेता है पर मेघों के घन घुम्भर काल में उसका मन व्याकुल हो जाता है और मेघों को ही दूत बनाकर वह अपनी प्रिया के पास भेजता है । फसाना तो मात्र इतना सा ही है, परन्तु कालिदास ने प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम को यक्ष के माध्यम से वियोग-व्याकुल भाषा में मुखर किया है ।''

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाकवि की इसी वेदना को नागार्जुन ने जिस काव्यात्मक समीक्षा के निकष में उतारा है वह अपने आप में अनूठा है । कवि को सम्बोधित करते हुए उनकी यह प्रसिद्ध कंविता एक ओर उनके कवित्व की ऊंचाइयों को पकड़ती है तो दूसरी ओर बाबा नागार्जुन की मर्मभेदी दृष्टि की झलक दिखाकर पाठकों को चकित कर देती है–

पर पीड़ा से पूर पूर हो
थक थक कर औ, चूर-चूर हो
अमल धवल गिरि के शिखरों पर
प्रियवर ! तुम कब तक सोये थे ?
रोया यक्ष कि तुम रोये, थे
कालिदास सच-सच बतलाना
इन्दुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोये थे
कालिदास सच-सच बतलाना ।

इस खण्डकाव्य में कालिदास अपने जीवन दर्शन का थोड़ा-थोड़ा संकेत देते हैं । व्यक्ति मनुष्य के हृदय की व्याकुल वेदना को अग-जग व्याप्त वेदना की पृष्ठभूमि में वे उसी के साथ एकमेक करके निखारते हैं । कुछ भी विच्छिन्न नहीं है । बिन्दु से लेकर पर्वत तक एक ही व्याकुल वेदना समुद्र की लहरों की तरह पछाड़ खा-खाकर लोट रही है । एक तार को छुओ तो सहस्रों छनछना उठते हैं । सब मिलकर एक ही संगीत का निर्माण करते हैं । मिलन स्थिति बिन्दु है, विरह गति वेग है । दोनों के परस्पर आकर्षण से रूप की प्रतीति होती रहती है, विचार मूर्त आकार ग्रहण करते हैं, भावना सौंदर्य बनाती है । "विरह में सौभाग्य पनपता है, रूप निखरता है, मन निर्मल होता है, बुद्धि एकता का सन्धान करती है" (हजारी प्रसाद द्विवेदी) । कालिदास साहित्य का यह तत्व नागार्जुन की रचनाओं में मिलता है, वह चाहे प्रकृति सौंदर्य हो या नारी सौंदर्य अथवा खेत, खलिहान का सौंदर्य । यत्र-तत्र भारतीय परम्परा संस्कृति इतिहास के रूप मिल जाते हैं । बाबा नागार्जुन को यह धरोहर कहना न होगा महाकवि कालिदास से प्राप्त हुई है ।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास के साहित्य में गुप्तकालीन भारत की छवि

डा० पूनम पाण्डेय*

गुप्तकाल की गणना भारत के ही नहीं बल्कि विश्व की समस्त सभ्यताओं के महत्वपूर्ण काल के रूप में की जाती है। यह काल भारतीय इतिहास में 'स्वर्ण युग' के नाम से प्रतिष्ठित है। इस काल में हमें राजनैतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ धार्मिक व सांस्कृतिक समन्वय का जो स्वरूप देखने को मिलता है, वह अद्वितीय है। कला, साहित्य, दर्शन, धर्म विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में विश्व की उत्कृष्ट नवीन सर्जनायें इस काल में हुईं। यह काल संस्कृत साहित्य के उन्नयन का काल था। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् कालिदास व उनकी अमूल्य कृतियाँ इस युग की ही देन हैं।

गुप्तकालीन भारतीय परिवेश को जानने में कालिदास के साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है। उनकी कृति का कथानक प्रत्यक्ष रूप से यद्यपि गुप्त सम्राटों अथवा इस काल के किसी अन्य प्रमुख व्यक्ति के सम्बन्धित नहीं है तथापि परोक्ष रूप से ये रचनायें गुप्तकाल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक स्थिति, भौगोलिक परिवेश आदि का विस्तृत एवं महत्वपूर्ण विवरण प्रदान करके के साथ-साथ इस काल के दार्शनिक चिन्तन की गहराइयों को भी प्रस्तुत करती हैं।

गुप्तकालीन इतिहास को जानने के स्रोत के रूप में कालिदास की रचनायें हमें निम्न क्षेत्रों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराती हैं:-

भौगोलिक परिवेश एवं साम्राज्य सीमा :-कालिदास कृत रघुवंश में रघु की दिग्विजय व प्रयाग प्रशस्ति के समुद्रगुप्त की दिग्विजय में गहरी समानता दृष्टिगोचर होती है। हरिषेण के 'प्रयाग प्रशस्ति' व कालिदास के 'रघुवंश' के शब्दों में भी गहरी साम्यता दिखाई देती है। सम्भवत: सम्राट समुद्रगुप्त की युद्ध यात्रा का स्मरण करके ही कालिदास ने रघु के दिग्विजय की कल्पना की है। कालिदास के रघु ने भारतीय सीमान्त के परे पारसी को तथा वंक्षु (आक्सस) नदी के तीर पर हुणों को पराजित किया। वहीं हम देखते हैं कि प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त ने "दैवपुत्र

* प्रवक्ता इतिहास, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शाही-शाही नुशाही'' की उपाधि धारण करने वाले भारतके पश्चिमोत्तर क्षेत्र से ईरान की सीमा तक के नरेशों को अधीन किया। समुद्रगुप्त ने जिन-जिन देशों पर आक्रमण किया था, प्राय: उन्हीं देशों का वर्णन कालिदास ने रघु के दिग्विजय का वर्णन करते समय किया है। रघु व समुद्रगुप्त दोनों की ही विजय यात्राओं में हिमालय के नेपाल आदि देश व ब्रह्मपुत्र नदी के तटवर्ती कामरूप आदि प्रदेश सम्मिलित हैं। विजय यात्रा के पश्चात् समुद्रगुप्त ने अश्वमेधयज्ञ किया। उसी प्रकार रघुवंश के रघु ने भी बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति में उद्धृत समुद्रगुप्त की विजयों को कालिदास के रघुवंश में रघु की दिग्विजय के रूप में पुष्ट किया गया है। इस रूप में प्रयाग प्रशस्ति की प्रमाणिकता स्वत: सिद्ध हो जाती है।

राजनैतिक स्थिति :–कालिदास के साहित्य में गुप्तकालीन राजनैतिक स्थिति पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 'रघुवंश' में कालिदास ने अपने ग्रन्थों में जिस आदर्श भारतीय सभ्यता का सजीव वर्णन किया है, वह गुप्त राजाओं का ही युग है। कालिदास का कथन है कि राजा रघु धर्मविजयी था, दूसरों का राज्य छीनकर उन्हें मार डालना उसे अभीष्ट नहीं था। वह शरणागत वत्सल था। हरिषेण के प्रयाग प्रशस्ति में भी समुद्रगुप्त को धर्मविजयी राजा के रूप में चित्रित किया गया है। अत: कालिदास व हरिषेण के धर्म विजयी राजा की कल्पना एक ही प्रकार की है। रघुवंश में कालिदास ने जिस पूर्ण शान्ति का चित्रण किया है वह गुप्त साम्राज्य को छोड़कर दुर्लभ है। कालिदास का यह विवरण कि रघु के साम्राज्य में इतनी शान्ति विराजमान थी कि हवा भी रास्ते में सोयी हुई प्रमत्त स्त्रियों के कपड़े हिलाने का साहस नहीं कर सकती थी। भला हाथ से कोई किसी वस्तु को कैसे चुरा सकता था ? फाह्यान के इस वर्णन से पूर्णत: मिलता है कि गुप्त साम्राज्य में पूर्ण शान्ति विराजमान थी तथा कोई भी चोरी नहीं करता था।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि कालिदास की रचनाओं में हमें शासक व शासन नीति के जो आदर्श प्राप्त होते हैं, वह वास्तव में गुप्त शासकों की उच्च आदर्शात्मक राजतन्त्रीय व्यवस्था का चित्रण ही है।

सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति :–कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में गुप्तकालीन व्यवहार की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। इसमें एक आदर्श हिन्दू राजा के कर्तव्य तथा दायभाग का परिचय प्राप्त होता है। शाकुन्तल में वर्णित राजा ने जहाज के डूबने से मर जाने वाले संतानहीन सामुद्रिक व्यापारी के धन के

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विभाग की जो व्याख्या की है, वह तात्कालिक सामाजिक स्थिति को स्पष्ट रूप से अंकित करता है।

इस नाटक में कालिदास ने राजा दुष्यन्त और शकुन्तला का गान्धर्व विवाह दिखाया है, साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया है कि पारस्परिक आकर्षण एवं प्रेम के कारण स्वेच्छा से स्थापित किया गया सम्बन्ध, जिसमें परिवार के लोगों की इच्छा न हो, वह अधिक बन्धन युक्त एवं दायित्वपूर्ण नहीं होता है। इसमें व्यक्ति धोखा दे सकता है, स्वार्थ की पूर्ति करके छोड़ सकता है। विवाह जैसे पावन संस्कार को स्थापित करने में स्वेच्छाचारिता व शीघ्रता हानिकारक हो सकती है।

इसी प्रकार इस नाटक में कण्व के आश्रम का विवरण करते हुए नाटककार ने वैदिककालीन आश्रम व्यवस्था को जीवन्त कर दिया है। आश्रम के नियम, विधान, शिष्टाचार, गुप्तकालीन सामाजिक परम्पराओं का स्पष्ट चित्रण करते हैं। एक तरफ सामाजिक बन्धन को तोड़ते हुए शकुन्तला के उदात्त प्रेम का विभिन्न प्रकार की अनुकूल व प्रतिकूल घटनाओं के साथ अन्त में सफलता को प्राप्त करना, प्रेम की पवित्रता को स्थापित करता है, वहीं शकुन्तला द्वारा नारीत्व की मर्यादा को प्रतिष्ठित करते हुए दुष्यन्त के सम्मुख सती व कुलटा स्त्री के अन्तर को सहज व सूक्ष्म ढंग से कहना और अन्त में ऋषि शाप के कारण भ्रान्ति हो जाने का प्रसंग प्रस्तुत कर, उसे निर्दोष सिद्ध करना, जैसी नाटक की घटनायें सतीत्व व सदाचार की महत्ता को ऊँचा बनाती हैं। पति से सच्चा प्रेम करने वाली साध्वी स्त्री का सदाचार व सतीत्व ऋषि के शाप को विमर्दित कर ऊँचा उठ जाता है।

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय नाटक जिसका कथासूत्र मूलतः ऋग्वेद की पुरूरवा व उर्वशी की कथा से लिया गया है। पाँच अंकों के इस नाटक में पार्थिव व स्वर्गीय दोनों प्रकार की घटनाओं को संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया गया और प्रकृति के माध्यम से मानवीय मर्यादाओं को प्रतिष्ठित किया है, जिसमें स्पष्ट रूप से गुप्तकालीन सामाजिक मर्यादायें दृष्टिगोचर होती हैं।

कालिदास द्वारा १७ सर्गों के महाकाव्य 'कुमारसंभव' को लिखने का प्रयोजन भी एकमात्र विवाह व प्रेम की पवित्रता और आध्यात्मिकता को सिद्ध करना प्रतीत होता है। अच्छे पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर नारी का सम्मान भी बढ़ जाता है; जिस प्रकार शिव से विवाह के पश्चात् पार्वती को जगत्माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कालिदास की रचनाओं में हमें जिस उच्च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामाजिक मर्यादा, आदर्श नारी के चरित्र, सामाजिक क्रियाकलापों में स्त्री पुरुष के समान अधिकार व महत्व आदि देखने को मिलती हैं; उसमें गुप्तकालीन समाज व्यवस्था की स्पष्ट झलक दिखायी देती है। इसकी पुष्टि चन्द्रगुप्त प्रथम के 'कुमारदेवी' शैली के सिक्के है जिसमें राजा के साथ रानी का चित्र अंकित होना स्त्री और पुरुष के समान महत्व व अधिकार को दर्शाता है। इसी प्रकार प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र से भी बात की पुष्टि होती है कि गुप्त समाज में स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त था, तभी तो चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता अपने पति रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् अपने पुत्रों की संरक्षिका के रूप में वाकाटक राज्य व शासन को सुचारु रूप से संभाल सकने में सक्षम हो सकी।

धार्मिक व दार्शनिक विचारधारायें :–राजतन्त्र के युग में उत्पन्न और राजाश्रय प्राप्त कवि कालिदास की काव्य चेतना सदा व सर्वत्र ही शिवम् की ओरं मुखरित दिखायी देती है। शिव के विराट व व्यापक रूप में ही सत्य व सुन्दर समाहित है। कालिदास ने सर्वप्रथम अध्यात्म दर्शन को गेय और आनन्दयुक्त बनाया है।

शिव में पालक व संहारक दोनों शक्तियाँ हैं। शिव विवेक है। अविवेक को दूर करने के लिए शिव का तृतीय नेत्र उपयोगी है, जिसमें दाहक शक्ति है। कालिदास ने अपनी इस शिवभावना का निर्वाह अपने काव्य में सर्वत्र किया है। जहाँ वे सागर को सुन्दर बतलाते हैं वहीं वे उसे भयानक भी कहते हैं।

कालिदास की काव्य चेतना में गुप्तकालीन धार्मिक परिवेश की झलक प्राप्त होती है। समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे गुप्त शासक जिन्होंने एक ओर रजोगुणी बनकर दिग्विजय की, वहीं दूसरी ओर ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों का आयोजन किया, जिससे जनता के सुख व समृद्धि की वृद्धि हो। कालिदास की काव्य चेतना का सर्वोत्तम निदर्शन मेघदूत है, जिसमें देश की भौगोलिक एकता, प्राकृतिक व सांस्कृतिक तथा दिव्य शक्तियों के साथ मानवीय इच्छाओं के शब्दचित्र निपुणता से उकेरे गये हैं।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने कालिदास के मेघदूत की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया है कि शृंगार के लोक के इसके रूप के संपादन द्वारा मानवीय मन को पूरी तरह रस तृप्त करना इसकी स्थूल व्याख्या मात्र है। कवि ने इसकी रचना करते हुए दार्शनिक चिन्तन की गहराईयों को छुआ है। यह वास्तव में शिवात्मक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चैतन्य की प्राप्ति का गूढ़ संकेत हैं। मेघ को कवि ने प्रकृति का काम-रूप पुरुष कहा है। विश्व की समस्त काम अभिलाषाओं का संभार लेकर मेघ उत्तर दिशा की ओर अहर्निश यात्रा कर रहा है, जहां हिमालय पर देवाधिदेव शिव का साक्षात् निवास है, जिनके मस्तक की चांदनी भोगपुरी अलका के भवनों को धवलित व भासमान करती है। अलका के उस लोक में काम की बाह्य-शक्ति शिव के लिए समर्पित हो जाती है। प्रकृति का कामरूप पुरुष भक्ति नम्र होकर शिव के चरण न्यास की परिक्रमा करता है, जिससे उसे स्थिर पद प्राप्त हो। हर गौरी सम्मुख वह अपने शरीर को सोपान भंगिमा में रखता है, जिससे वे इस कामात्मा पुरुष पर पैर रख कर मणिपद्य पर आरोहण कर सकें। मणिपद्य प्राचीन योग विद्या का संकेत था, जहाँ अमृत का अधिष्ठान माना गया है अर्थात् गूढ़ अर्थ में मेघदूत का संदेश जल तत्व को अपने भीतर स्तम्भित करके कुण्डलिनी जागरण की अवस्था को प्राप्त कर शिवात्मक चैतन्य के साथ एकाकार करना है।

कालिदास की रचनाओं में धर्मनीति की व्याख्या व दार्शनिक चिन्तन की यह गूढ़ता निश्चित रूप से गुप्तकालीन धार्मिक व दार्शनिक विचारधारा को परिलक्षित करती है। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि गुप्तकालीन ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी के लिए हम जिन साहित्यिक व पुरातात्त्विक स्रोतों पर निर्भर करते हैं, उनमें कालिदास की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण है इनमें हमें गुप्तकालीन भारत की छबि स्पष्ट दिखलाई देती है।

सन्दर्भ

१. गुप्त साम्राज्य का इतिहास (प्रथम खण्ड) : डॉ० वसुदेव उपाध्याय

२. गुप्त साम्राज्य का इतिहास (द्वितीय खण्ड) : डॉ० वसुदेव उपाध्याय

३. मेघदूत : डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

४. कालिदास : एक अनुशीलन–श्री देवदत्त शास्त्री

५. कालिदास व उसका मानवीय साहित्य–डॉ० अच्युतानन्द घिल्डियाल, श्रीमती गोदावरी घिल्डियाल।

६. प्राचीन भारत का इतिहास : विमल चन्द्र पाण्डेय।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालिदास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डा० नन्दिनी वर्मा*

भारतीय कवियों में कालिदास का नाम सर्वोपरि है। वाल्मीकि और व्यास के पश्चात् संस्कृत वाङ्मय में सर्वाधिक यश उन्हें ही प्राप्त हुआ है। अपनी विशेषताओं के कारण ही उन्हें 'कविकुलगुरु' की उपाधि से विभूषित किया गया है। उन्होंने अपनी वाणी में राष्ट्रीय स्तर पर काव्य की रचना कर न केवल उसे कालजयी बनाया, वरन् निर्माण काल से लेकर प्रत्येक युग में उसे प्रासंगिक तथा उद्देश्यपूर्ण भी बनाया। अत: वर्तमानकाल में जितना आदर वाल्मीकि और व्यास के ग्रन्थों को है उतना ही कालिदास की कृतियों को भी। इनकी रचनाएं न केवल संस्कृत भाषा–शैली एवं काव्य के चरमोत्कर्ष की प्रतिनिधि हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति के महनीय गौरव काल की भी प्रतीक हैं। कालिदास को सामान्यतया गुप्त युग का महाकवि स्वीकार किया गया है। सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए इस युग की प्रतिष्ठा का बहुत कुछ श्रेय कालिदास के साहित्य को ही है। किन्तु इस अमर रचनाकार ने अपने विषय में कहीं भी कुछ भी नहीं लिखा है अत: उनके काल, जन्मस्थान तथा, जीवन इत्यादि संबंधी बातों की जानकारी केवल अनुमान पर ही आश्रित है। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने जो विचार व्यक्त किये हैं, उनमें भी परस्पर मतभेद हैं। जनश्रुतियों द्वारा प्राप्त सूचनाएं भले ही रोचक हों, किन्तु इतिहासपरक नहीं सिद्ध होती हैं। क्योंकि तत्संबंधी परंपरा की विश्वस्तता और प्राचीनता संदिग्ध है। कालिदास स्वयं अपने ग्रंथों में उसके विषय में पूर्णतया मौन हैं। अत: इस महान कवि का परिचय तथा उनकी महनीय कीर्ति का आधार उनके चार काव्य १. **रघुवंश**, २. **कुमारसंभव**, ३. **मेघदूत**, ४. **ऋतुसंहार** एवं तीन नाटक १. **मालविकाग्निमित्र**, २. **विक्रमोर्वशीय**, ३. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** हैं। कालिदास के आविर्भाव-काल के संबंध में इतिहासकारों के बीच गहरा मतभेद है और इस विषय में तीन सिद्धान्त मुख्य हैं–१. कुछ विद्वान् इनका काल-दिवस-संवत् के प्रारम्भ में रखते हैं, २. तो कुछ गुप्त काल में, जबकि अन्य विद्वान् इन्हें ३. छठीं शताब्दी ही में स्वीकार करते हैं। **प्रथम** सिद्धान्त को मानने वालों का कहना है कि विक्रम संवत् के प्रारम्भ में विक्रमादित्य नाम का राजा

---

* व्याख्याता - प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय कमच्छा, वाराणसी।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था, जिसके यहाँ कालिदास राजकवि थे। किन्तु तत्कालीन इतिहास का अध्ययन करने के बाद ऐसे किसी राजा की सत्ता के विषय में जानकारी नहीं मिलती है। इतना ही नहीं, न तो उस शासक की कोई मुद्रा (सिक्का) प्राप्त हुई है और न ही कोई शिलालेख। अत: प्रथम सिद्धान्त को स्वीकार करना असम्भव सा प्रतीत होता है। छठीं श. के सिद्धान्त को मानने वाले विद्वानों में विदेशी विद्वान् डा० हार्नले तथा डा० फर्गुसन विशेष उल्लेखनीय है। इनके अनुसार कालिदास राजा यशोधर्मन के दरबारी कवि थे, जिसने हूणों को पराजित कर विजय के उपलक्ष्य में विक्रमादित्य उपाधि-धारण की थी। किन्तु भारतीय विद्वानों ने पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इन विदेशी विद्वानों के मत का खंडन किया है। कालिदास को गुप्तकाल का मानने के सिद्धान्त के मत का प्रतिपादन डा० स्मिथ, मैक्डोनल तथा कीथ इत्यादि विदेशी विद्वानों ने किया। इनके मत का समर्थन भारतीय इतिहास के सम्मानित एवं स्थापित विद्वानों रामकृष्ण भण्डारकर तथा पण्डित रामावतार शर्मा द्वारा किया गया। प्राय: सभी सुप्रसिद्ध भारतीय तथा विदेशी विद्वान् इसी सिद्धान्त को मानते हैं तथा कालिदास को गुप्त युग का प्रतिनिधि-महाकवि स्वीकार करते हैं। संभवत: उन्हें गुप्त वंशीय शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समकालीन रखा जा सकता है। क्योंकि इस शासक के साथ उनके संबंधों के कुछ प्रमाण देखे जा सकते हैं–यथा जिस समय उत्तर भारत में गुप्त वंश का साम्राज्य प्रारम्भ हुआ, उसी समय कुंतल प्रदेश पर कदम्ब वंश का शासन भी प्रारम्भ हुआ था। कुन्तल का अधिपति होने के कारण यही कदम्ब शासक कुन्तलेश्वर के नाम से भी संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध हुआ। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने राजनीतिक लाभ के लिए कदम्ब कुल के राजा के साथ संबंध स्थापित किया। इन दोनों राजवंशों के सम्बन्ध के पुष्ट प्रमाण साहित्य तथा शिलालेख से प्राप्त होते हैं।

राजा भोज के श्रृंगार प्रकाश के आठवें प्रकाश में एक सन्दर्भ मिलता है। उस स्थान पर कालिदास तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य में कुंतलनरेश के विषय में वार्तालाप का उल्लेख है। कालिदास कुंतल नरेश के संबंध में कहते हैं–

'अरुकलहसित्वात्क्षालितानीव कान्त्या
मुकुलितनयनत्वाद् व्यक्तकर्णोत्पलानि ।
पिबति मधुसुगन्धीन्याननानि प्रियाणां
त्वयि विनिहितभारः कुन्तलानामधीशः ।।''[१]

---

१. डा० वासुदेव उपाध्याय-गुप्त साम्राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड पृ० ८७।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस वर्णन से मालूम होता है कि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के राजदूत बनकर कुंतल राजा के दरबार में गये थे। इस कथन की पुष्टि क्षेमेन्द्र द्वारा रचित औचित्य विचार चर्चा से होती है। इसमें उल्लेख मिलता है कि कालिदास ने किसी 'कुतंलेश्वर दौत्य' नामक पुस्तक की रचना की थी। क्षेमेन्द्र ने कालिदास के निम्न पद्य को उद्धृत किया है–

इह निवसति मेरुः शेखरः क्ष्माधराणाम्
इहविनिहितभाराः सागराः सप्तपान्ये।
इदमहिपतिभोगस्तम्भविभ्राज्यमानं
धरणितलमिहैव स्थानमस्मद्विधानाम्।

कदम्ब वंश के शासक कुस्थवर्मन को ही गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का समकालीन कुंतलेश नरेश माना जाता है इसका सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि इसके राज्यकाल के एक शिलालेख में कदम्बों तथा गुप्तों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध का उल्लेख है। संभवतः कुंतल शासक ने अपनी कन्या का विवाह चन्द्रगुप्त द्वितीय से किया था–

गुप्तादिपार्थिवकुलाम्बुरुहस्थलानि स्नेहादर-प्रणयसम्भ्रमकेसराणि।
श्रीमन्त्यनेकनृपषट्पदसेवितानि यो बोधयत् दुहितृदीधितिभिर्नृपार्कैः॥[१]

ऐसा माना जाता है कि चन्द्रगुप्त ने बाजारक राणा के पुत्र रुद्रसेन के साथ अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह किया था। दामाद की अल्पायु में ही मृत्यु होने के कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय ने प्रभावती गुप्ता को अपना संरक्षण प्रदान करते हुए राज्य करवाना आरम्भ किया। प्राकृत काव्य सेतुबन्ध के भाष्यकार के अनुसार चन्द्रगुप्त का नाती प्रवरसेन द्वितीय चन्द्रगुप्त के दरबार में रहता था, जिसने एक काव्य की रचना की थी। जिसे विक्रमादित्य के निर्देशानुसार कालिदास ने संशोधित किया था। इस कथन के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य कालिदास तथा काटक राजा प्रवरसेन द्वितीय समका प्रतीत होते हैं।[२] इन्हीं युक्तियों के आधार पर कालिदास को गुप्तकाल में आविर्भूत मानना ही तर्क संगत प्रतीत होता है।

●

१. डा० वासुदेव उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड पृ० ८८।
२. डा० राधा कुमुद मुखर्जी–गुप्त साम्राज्य पृ० ५१-५२।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मौलिक विचार प्रस्तुत करते हुए प्रो. युगुल किशोर मिश्र (वेद विभागाध्यक्ष सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि.) तथा प्रो. राजीव रंजन सिंह (श्रमणविद्यासंकायाध्यक्ष सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि.)

संगोष्ठी का संचालन करती हुई सह संयोजिका डॉ. शान्ता चटर्जी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्घाटन सत्र में विषय प्रवर्तन करती हुई संगोष्ठी की संयोजिका डॉ. कमला पाण्डेय एवम् आयोजिका डॉ. कुसुम मिश्रा (आचार्या)

दर्शक दीर्घा में बैठे हुए आमन्त्रित अतिथिगण

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha